स्वर योग

स्वामी शिवानन्द

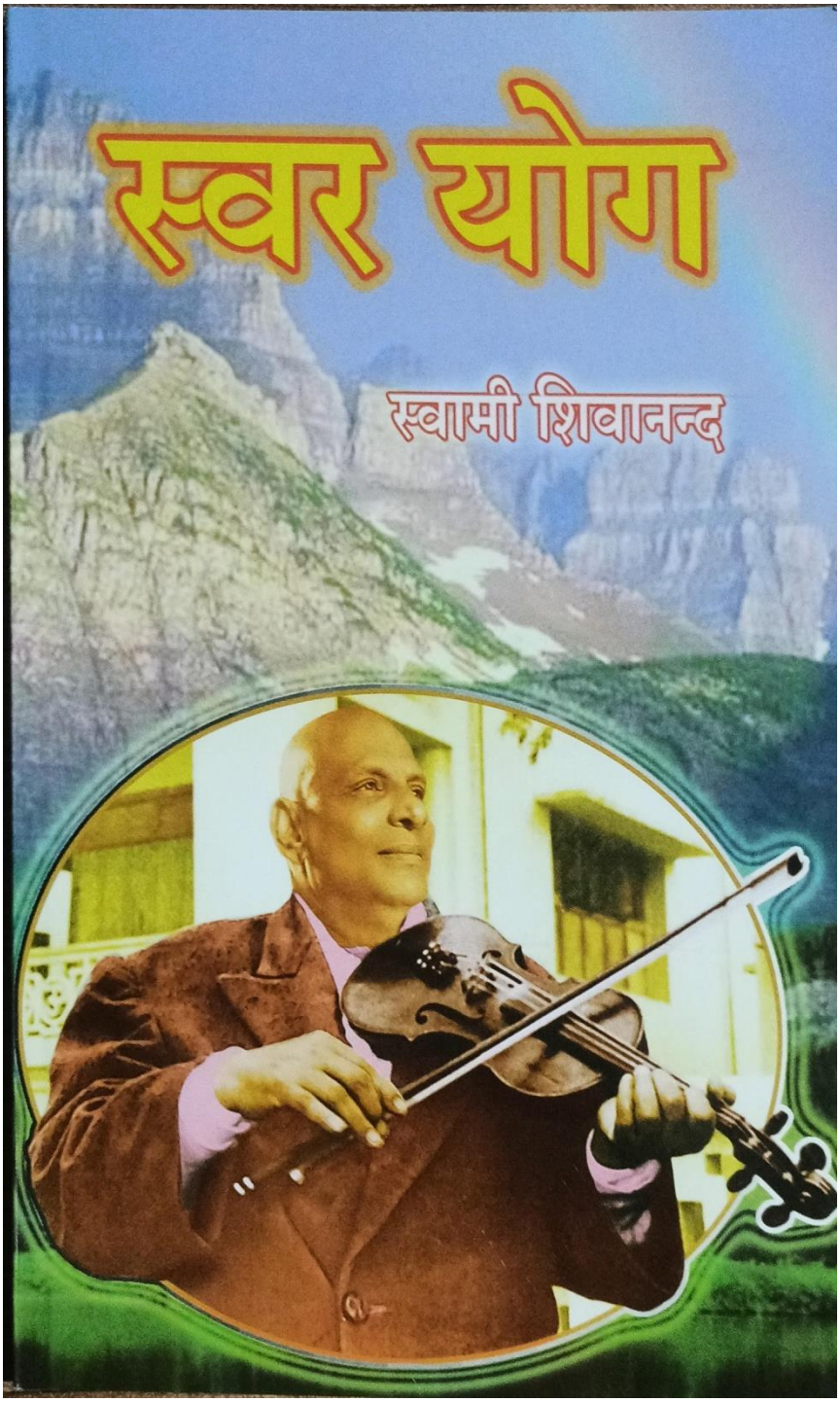

स्वर योग

'SVARA YOGA' का हिन्दी अनुवाद

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादिका
शिवानन्द राधिका अशोक

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-249 192
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dishq.org
प्रथम हिन्दी संस्करण-2006
द्वितीय हिन्दी संस्करण-2008
तृतीय हिन्दी संस्करण-2011
चतुर्थ हिन्दी संस्करण-2016

पंचम हिन्दी संस्करण-2019
[500 प्रतियाँ]

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

HS 14

PRICE: 80/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, शिवानन्दनगर, जि. टिहरी गढ़वाल,
उत्तराखण्ड, पिन 249 192' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

प्रकाशकीय

स्वर योग प्राचीन हिन्दू विज्ञान एवं कला है जिसने इस शरीर में जीवन-तत्त्व, प्राण तथा जीवन के कार्यों को पूर्णत: विश्लेषित किया है। यह विभिन्न नाड़ियों के बारे में व्यवहृत है जिनके साथ प्राण इस शरीर में स्पन्दित होता है, इसे जीवन देता है तथा यह उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु को स्थिर करने हेतु प्राण के प्रवाह को नियमित करने के

साधनों का भी निर्देश देता है। यह विज्ञान अथवा स्वर योग प्राणायाम विज्ञान से अधिक सूक्ष्म और भली प्रकार समझा जा सकने योग्य है। यदि प्राणायाम से इसकी तुलना की जाये, तो स्वर योग के समक्ष प्राणायाम इसकी बाह्य रेखा के समान है। स्वर योग में हमें रोग तथा मृत्यु को रोकने हेतु विभिन्न प्रभावशाली साधन प्राप्त होते हैं। स्वर योग की साधना निपुण योगी के मार्ग-दर्शन में की जानी चाहिए।

बीसवीं सदी के आधुनिक ऋषि और योगी स्वामी शिवानन्द जी ने इस पुस्तक में इस अल्पज्ञात किन्तु महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक, वैज्ञानिक और योग की शाखा (जिसका वर्णन प्राणायाम साधना, हठयोग, योगाभ्यास और कुण्डलिनी योग में सामान्य रूप से नहीं मिलता है) के बारे में लिखा है। आध्यात्मिक साधकों और पाठकों हेतु इस पुस्तक के विषय पूर्ण व्यावहारिक लाभ के हैं। और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रत्येक पाठक के लिए यह उपयोगी है।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादिका के दो शब्द

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में मेरा शत-शत नमन।

गुरुदेव की लिखी हुई प्रत्येक पुस्तक पूर्ण रूप से व्यावहारिक जीवन में उतारने योग्य है; क्योंकि गुरुदेव ने पहले स्वयं इन्हें जीवन में व्यवहार में लाया है, उसके बाद ही इन्हें जन-मानस के लाभ हेतु पुस्तक के रूप में लिखा है। वास्तव में इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करते समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि गुरुदेव स्वयं ही स्वर

योगी थे। ये बात तो वैसे सर्व विदित है कि स्वामी जी त्रिकालदर्शी थे और यह स्वर योगी को प्राप्त होने वाली सिद्धियों में से एक है।

गुरुदेव ने इस पुस्तक में हमें अत्यन्त सरल स्वर साधना बतायी है तथा यह बतलाया है कि किस दिन हमारा कौन-सा स्वर चलना चाहिए, कौन-से स्वर में कौन-से कार्य करने चाहिए जिससे हम उस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकें तथा यदि आपका स्वर सही न चल रहा हो, उसे कैसे ठीक किया जाये, इस हेतु उपाय भी इस पुस्तक में दिये गये हैं। इसके साथ-साथ हमारा शरीर जिन पंच तत्त्वों से निर्मित है, उनके बारे में तथा उनके प्रयोग के बारे में भी इस पुस्तक में वर्णन है और हमें इसमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण किन्तु सरल साधना मिलती है, वह है छाया त्राटक जिसके बारह वर्ष तक अभ्यास करने से मनुष्य त्रिकालज्ञ हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में उस योग के बारे में गुरुदेव ने लिखा है जो हमारी श्वासों से सम्बन्धित है। यह तो हम सभी जानते हैं कि जब तक श्वास है, तभी तक हमारा जीवन है; लेकिन यह बात बहुत ही कम लोगों को विदित है कि इन्हीं श्वासों को नियमित करके हम जीवन के प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं और अनन्त काल तक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं और इसी साधना का नाम है स्वर योग साधना।

अन्त में मेरा आप सभी से यही विनम्र निवेदन है कि आप इस पुस्तक को पढ़ कर अपने दैनिक जीवन में प्रयोग में लायें तथा अपने प्रत्येक कार्य में सफलता और दीर्घायु तथा स्वस्थ जीवन प्राप्त करें।

गुरुदेव की अहेतुकी कृपा से मुझे कुछ पुस्तकों का अंग्रेजी से हिन्दी माध्यम में अनुवाद करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मेरे द्वारा अनुवादित कुछ पुस्तकों का उल्लेख इस प्रकार है: घर की सरल औषधियाँ, अच्छी नींद कैसे सोयें, सौ वर्ष कैसे जियें, कुण्डलिनी योग, स्वर योग, हठ योग, धारणा और ध्यान, कर्म और रोग, आधुनिक सन्त स्वामी शिवानन्द एक जीवनी, देवी माहात्म्य, धनवान् कैसे बनें और मूर्तिपूजा का दर्शन।

सदा गुरुदेव की सेवा में
शिवानन्द राधिका अशोक

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय 2

अनुवादिका के दो शब्द 3

अध्याय-1

प्रस्तावना 8

- सच्चा च्यवनप्राश 9
- स्वास्थ्य और दीर्घायु 9
- स्वर योग 10

अध्याया-2

स्वर एवं योग 11

- स्वर 11
- योग 12

अध्याया-3

प्राण और इसके विभाग 13

नाड़ियाँ 14
श्वास के विभाग 15
शरीर की स्वच्छता 15
प्राणायाम हेतु नियम 16

अध्याय–4

सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि 17
सुषुम्ना 18
नाड़ियों के लक्षण 19
काल पर विजय 19

अध्याय–5

स्वर विज्ञान 21
स्वर (प्रवाह) की अवधि 21
स्वस्थ प्रवाह (स्वर) 21
स्वर का महत्त्व 22
स्वर-परिवर्तन 23
सुषुम्ना नाड़ी में श्वास-प्रवाह 23
स्वर का उपयोग 24

अध्याय–6

तत्त्व 25
पंच तत्त्व 26
तत्त्वों पर ध्यान 26
रंगों द्वारा तत्त्वों की पहचान 27
आकार से तत्त्वों की पहचान 27
श्वास-प्रवाह की दिशा द्वारा तत्त्वों की पहचान 28
रंग-परीक्षण द्वारा तत्त्वों की पहचान 28
तत्त्वों का स्वाद 28
श्वास-प्रवाह की लम्बाई 28
तत्त्व तथा नक्षत्रों एवं ग्रहों आदि का सम्बन्ध 29
तत्त्व और मानव-शरीर 29
तत्त्वों के लाभ 30

अध्याया–7

सामान्य अनुमान 31
वार्षिक पूर्वानुमान 31
स्वयं के लिए दिशा-निर्देश 32
नाड़ियों का प्रवाह 33

अध्याय-8
महत्त्वपूर्ण निर्देश 34
अध्याय-9
व्यावहारिक पथ-प्रदर्शन 37
अभ्यास हेतु उपयुक्त आसन 37
तीन महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ 38
अच्छे तथा बुरे की भविष्यवाणी हेतु नियम 39
श्वास के साथ पंच तत्त्वों का संयोग 39
रोगों के लिए 40
नाड़ी को कैसे चलना चाहिए 40
भीतर आने वाली तथा बाहर जाने वाली श्वास 42
स्वरों द्वारा परिणाम के संकेत 42
अध्याय-10
मन का क्रमशः ऊर्ध्वारोहण 43
अध्याय-11
कुण्डलिनी जागरण होने पर अनुभव 44
योगी अमृत का पान करता है 45
परिशिष्ट
शिव-स्वरोदयम् 46

स्वर योग

अध्याय १

प्रस्तावना

वर्तमान कुछ शताब्दियों में विज्ञान की अपार प्रगति के बाद भी यह जीवन सदा रहस्यमय है। यहाँ तक कि प्रवीण चिकित्सकों द्वारा की गयी शोधों के बाद भी यह रहस्य सुलझ नहीं सका है। संक्षेप में यह जीवन किसी भी प्रयोगशाला में प्रयोग का विषय नहीं बना। भारतवर्ष के सन्तों और ऋषियों की मानसिक प्रयोगशालाएँ ही हमारी एकमात्र पथ-प्रदर्शक हैं, जो हमारे जीवन की इस पहेली को सुलझाती हैं। यही ज्ञान हमने अपने प्राचीन ऋषियों और योगियों से उत्तराधिकार में प्राप्त किया है।

भारतीय दर्शन शास्त्र, योग-वेदान्त के इतिहास में हमें जीवन के प्रति अनेक बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण मिलते हैं। दर्शन के विभिन्न तत्त्वदर्शियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से जीवन को स्वयं के तरीके से विश्लेषित किया है। लेकिन हिन्दू विचारों के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ उपनिषद् ने हमें जीवन का सही प्रस्तुतिकरण दिया है। उपनिषदों के ऋषियों को प्रत्येक जीव के जन्म, वृद्धि तथा क्रियाकलापों के निष्पक्ष और पूर्ण विश्लेषण ने इस निर्णय पर पहुँचाया है कि श्वास ही जीवन, ऊर्जा और क्रियाशीलता है तथा यह कि श्वसन क्रिया ही जीवन, ऊर्जा और गतिविधि है।

मनुष्य, जैसा कि हम देखते हैं, तीन भागों से निर्मित है। प्रथम तो हम मांस और रक्त का पिण्ड देखते हैं जो नाड़ी तन्तुओं के जाल द्वारा आपस में जुड़ा हुआ है तथा इसका आधार हड्डियों से निर्मित कंकाल है। यह मांस का पिण्ड स्वयं कोई कार्य करने में असमर्थ है। दूसरा भाग है वह चेतना जो इस पिण्ड के भीतर निवास करती है। चेतना भी अपने अद्वैत गुण के कारण निष्क्रिय रहती है। यहाँ तक कि जीव, जो अहंकार से युक्त है, उसमें कारण स्थिति में यह चेतना उसी प्रकार रहती है जैसे शहर को अन्धकार की चादर ने ढाँक रखा हो। कारण स्थिति में किसी प्रकार की गतिविधि नहीं होती है। इससे अगली स्थिति सूक्ष्म अवस्था में क्रियाविधि प्रारम्भ होती है। यही तीसरा भाग है। जीव तथा सूक्ष्म शरीर को जोड़ने वाला तन्तु है प्राण। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल भौतिक शरीर को जोड़ने वाला तन्तु वह वायु है जिसे हम श्वास द्वारा भीतर लेते हैं। यह वायु इसमें निहित प्राण का स्थूल रूप है।

यह प्राण की गति है जो सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के विभिन्न केन्द्रों को संचालित करती है। यह हमारे द्वारा श्वास के द्वारा लिये जाने वाले प्राण की गति है जो हमारे हाथों, पैरों तथा अंगों को संचालित करती है और यह हमारे शरीर के प्रत्येक कार्य को सहारा देती है।

ईशावास्योपनिषद् में आप पायेंगे : **"तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति"**, जिसका अर्थ इस प्रकार है- मातरिश्वान (वायु) सभी जीवित प्राणियों की गतिविधियों को सहारा देती है। प्रश्नोपनिषद् के द्वितीय प्रश्न में आप पायेंगे : **"तान् वरिष्ठः प्राण उवाच... अवष्टभ्य विधारयामीति"**, प्राण उनमें से सबसे बड़ा कहा गया है। "भ्रमित न हों, मैंने इस शरीर को अवलम्बन प्रदान करने के लिए स्वयं को पाँच भागों में विभाजित किया है।" पुनः यही विचार आप बृहदारण्यक उपनिषद् (अ. ६, श्लोक १) में पायेंगे।

किसी भी जीव के लिए प्राण अथवा जीवन शक्ति के बिना कोई कार्य करना सम्भव नहीं है। एक तरफ जीव के अहंभाव का अस्तित्व है तथा दूसरी तरफ इसके वाहन शरीर-स्थूल अथवा सूक्ष्म का अस्तित्व है। सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु से सम्पर्क में आने पर अहंभाव एक हो जाता है और सोचता है कि मैं ही यह शरीर हूँ। इसके अगले ही क्षण यदि शरीर के श्वसन-संस्थान में कुछ गड़बड़ होती है, तो यह उससे जुड़ जाता है। लेकिन सत्य तो यह है कि वह इन सबसे परे है और वह तो इस भौतिक शरीर और प्राण के कार्यों के विश्लेषणात्मक अध्ययन हेतु इस सबको नियन्त्रित करने की स्थिति में है।

यदि एक बार मनुष्य इस प्राण का प्रबन्धन किस प्रकार किया जाये, यह सीख जाता है तो वह जीवन के प्रश्न को सरलता से हल कर लेगा और जीवन पर स्वामित्व प्राप्त कर लेगा तथा अनन्त वर्षों तक निरोग जीवन व्यतीत कर सकेगा। तब वह उस स्थिति में होगा, जब वह मन के विचार मात्र से ही ब्रह्माण्ड से अधिकाधिक मात्रा में यह ऊर्जा तत्त्व, जीवन शक्ति खींच सकेगा। वह ब्रह्माण्ड से ऊर्जा के दोहन के रहस्य तथा जीवन का किस प्रकार उपयोग किया जाये और उसे किस प्रकार बनाये रखा जाये, यह जानने के बाद वह सदा युवा रह सकता है। यही समय को छलने का, दिन के चौबीसों घण्टे काम कर सकने का, सदैव ताजगी और ऊर्जा तथा यौवन से परिपूर्ण रहने का यौगिक मार्ग है।

सच्चा च्यवनप्राश

बाजार में आयुर्वेदिक च्यवनप्राश प्राप्त होता है। इसका नाम च्यवन ऋषि के नाम पर रखा गया है। च्यवन ऋषि की पौराणिक कथा से हमें ज्ञात होता है कि किस प्रकार उन्होंने देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों को प्रसन्न किया और पुन: यौवन प्राप्त किया। च्यवनप्राश का प्रयोग यौवन और ऊर्जा को अक्षुण बनाये रखने हेतु होता है

च्यवन ऋषि की कहानी का गुप्त अर्थ विशेष महत्त्वपूर्ण है। च्यवन ऋषि इस मानव-शरीर को व्यक्त करते हैं। च्यवन की उत्पत्ति मूल संस्कृत शब्द च्यु से हुई है। इसका अर्थ है-जाने के लिए। यह शरीर कभी एक जगह नहीं ठहरता, वरन् सदैव एक अवस्था से दूसरी में जाता रहता है। इस प्रकार यह बचपन से वृद्धावस्था तक विकसित होता है और फिर नष्ट हो जाता है। शरीर की ज्ञानेन्द्रियाँ देव हैं। ये प्राण की शक्ति से सदा युवा और ऊर्जावान् बने रहते हैं। जिस प्रकार शारीरिक रोगों के लिए हम चिकित्सक के पास जाते हैं, उसी प्रकार उनकी ऊर्जा एवं जीवन शक्ति के लिए वे प्राण पर निर्भर हैं। प्राण और अपान अश्विनीकुमार हैं। इन्हें अश्विनीकुमार इसलिए कहा गया है; क्योंकि वे दो घोड़ों की भाँति बिना एक क्षण भी विश्राम किये निरन्तर दौड़ते रहते हैं। ये अविभेद्य हैं, इसलिए इन्हें जुड़वाँ कहते हैं। च्यवन ऋषि ने इनका अनुग्रह प्राप्त किया अर्थात् प्राण तथा अपान पर नियन्त्रण प्राप्त किया और यौवन, ओज तथा ऊर्जा के आनन्द उपभोग के लिए उनका उपयोग किया।

इस प्रकार च्यवन ऋषि की औषधि सच्चा च्यवनप्राश का चिर-यौवन प्राप्त करने हेतु प्रयोग करने का अर्थ है-योग के द्वारा श्वास पर नियन्त्रण और उसका उपयोग। और यही रामबाण शक्तिवर्धक तथा शक्तिप्रदाता है। इसलिए यह प्रत्येक उस व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है जो दीर्घायु, शक्ति, उत्साह, स्फूर्ति एवं ओज से पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता हो।

स्वास्थ्य और दीर्घायु

आयु में वृद्धि के साथ शरीर में क्षीणता आना अवश्यम्भावी है। यदि इस क्षीणता को रोका जा सके, तो वृद्धावस्था के कारण आने वाली दुर्बलता से बचा जा सकता है। यह कार्य निम्न क्रियाओं को दैनिक दिनचर्या में संयुक्त करके किया जा सकता है :

विपरीत करणी प्रातः-सायं दोनों समय एक-एक घण्टे

सरस्वती चालन प्रातः-सायं दोनों समय ४५-४५ मिनट

सरस्वती चालन के तत्काल पश्चात् भस्त्रिका करना चाहिए।

और निम्न क्रमानुसार बन्ध त्रय का अभ्यास किया जाये :

प्रथम-सरस्वती चालन, द्वितीय-जालन्धर बन्ध, तृतीय- उड्डियान बन्ध, चतुर्थ-मूल बन्ध ।

यदि उपरोक्त के साथ केवल कुम्भक संयुक्त कर दिया जाये, तो वृद्धावस्था को रोका जा सकता है।

स्वर योग

स्वर योग प्राचीन हिन्दू विज्ञान तथा कला है जिसने इस शरीर में जीवन-तत्त्व, प्राण की गतिविधि और जीवन के कार्य-सम्पादन का पूर्ण विश्लेषण किया है। यह विभिन्न नाड़ियों के बारे में व्यवहत है जिनके साथ यह प्राण इस शरीर में स्पन्दित होता है, इसे जीवन देता है तथा यह उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु को स्थिर करने हेतु प्राण के प्रवाह को नियमित करने हेतु साधनों का निर्देश देता है। यह विज्ञान या स्वर योग प्राणायाम-साधना की अपेक्षा अधिक सरल और सरलता से समझा जा सकता है। यदि प्राणायाम से स्वर योग की तुलना की जाये, तो प्राणायाम स्वर योग की बाहरी सीमा मात्र है। स्वर योग में हमें रोग तथा मृत्यु को रोकने की विभिन्न प्रभावकारी विधियाँ प्राप्त होती हैं। स्वर योग की साधना पूर्ण योगी (स्वर योग में प्रवीण) के प्रत्यक्ष निर्देशन में की जानी चाहिए।

अध्याय २

स्वर एवं योग

स्वर

स्वर अर्थात् वायु जो नासिका-रन्ध्रों से श्वास द्वारा तथा घुरटि द्वारा ली जाती है। यह शब्द मूल स्वर शब्द से लिया गया है। स्वर का अर्थ है-'आवाज' तथा इसका दूसरा अर्थ है- 'श्वास लेना' ।

श्वास दोनों नासा-रन्ध्रों से एक-समान नहीं आती। जब एक नासा-रन्ध्र से श्वास बन्द हो जाती है, तो दूसरे से प्रारम्भ हो जाती है। किसी भी नासा-रन्ध्र से श्वास के प्रारम्भ होने को 'स्वरोदय' कहते हैं।

प्राचीन ऋषियों ने दोनों नासा-रन्ध्रों में से प्रत्येक में श्वास के प्रारम्भ होने (स्वरोदय) तथा बन्द होने पर कुछ विशेष बातों को देखा, जो उनकी विभिन्न गतिविधियों पर प्रभाव ही नहीं डालती, वरन् उन पर शासन करती थीं। इस शरीर में जीवन की उपस्थिति, विभिन्न आन्तरिक अंगों के कार्य, स्वास्थ्य की पूर्णता अथवा रोगों का प्राकट्य, मन का सन्तुलन अथवा विचलन-सभी किसी भी एक नासा-रन्ध्र में श्वास के प्रवाह पर निर्भर करते हैं।

इन ऋषियों ने श्वास की गति के विश्लेषणात्मक अध्ययन के अपने अनुभवों को लिपिबद्ध किया तथा इसे विभिन्न नामों जैसे स्वरोदय, स्वर विज्ञान, स्वर शास्त्र आदि से सम्बोधित किया।

स्वर या श्वास सभी प्राणियों का प्रथम कारण है; क्योंकि बिना इसके कोई कार्य सम्भव नहीं है। स्वर इस शरीर में बिलकुल शुद्ध होते हैं; लेकिन ये उन नाड़ियों पर निर्भर करते हैं, जिनमें इनका प्रवाह होता है। लिंग शरीर (स्वर तथा नाड़ियों द्वारा निर्मित है।

स्वर मात्र एक है। यह पहले स्वयं को तीन भागों में विभाजित करता है तथा यह पाँच गुणा काम करता है और इस प्रकार यह अपनी पूर्णता को खोये बिना विभिन्न पच्चीस प्रकारों में प्रकट होता है।

स्वर ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। स्वर योग से गुप्त ज्ञान तथा स्वर योग से अधिक उपयोगी सम्पत्ति कोई हो ही नहीं सकती। स्वर में ही सारे वेद और शास्त्र हैं। यह रहस्यों का रहस्य गुप्त से भी गुप्त, ब्रह्म अथवा परमात्मा को प्रकट करने वाला तथा परम शान्ति और परमानन्द को देने वाला है।

अन्तःश्वसन और उच्छ्वसन की प्रकृति का ज्ञान होने से, स्वर योग को व्यावहारिक रूप से और सैद्धान्तिक रूप से अच्छी तरह समझने पर वर्तमान काल, भूत काल और भविष्य काल का ज्ञान हो जाता है, चमत्कारिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं तथा काल पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। स्वर योग की शक्ति से मनुष्य मृत्यु से परे हो जाता है और उसे इच्छा-मृत्यु अथवा इस शरीर को अत्यधिक दीर्घ काल तक बनाये रखने की शक्ति प्राप्त होती है।

योग

योग शब्द की व्युत्पत्ति मूल युज शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- योग करना या जोड़ना। इसके उच्च अर्थ में इसका मतलब है-जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ना, अंश का सम्पूर्ण से एक होना, मनुष्य का ब्रह्माण्ड में विलय। यह एक उत्कृष्ट विज्ञान है जो विभिन्न लोकों, भौतिक, तारालोक, मानसिक बुद्धि, अन्तर्ज्ञान आदि से सम्बद्ध है, और यह सभी में समन्वय लाता है।

कई लोग ऐसा सोचते हैं कि योग व्यक्ति के सामान्य जीवन से भिन्न कुछ और है अथवा यह उनसे सम्बन्धित है जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-साक्षात्कार हेतु सांसारिक जीवन को त्याग दिया है। लेकिन ऐसा नहीं समझना चाहिए।

योगाभ्यास वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता है। कोई भी वह विज्ञान जो व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों के समन्वयपूर्ण विकास हेतु प्रेरित करे, जो जीवन की पूर्णता हेतु प्रेरित करे और जो व्यक्ति को स्वास्थ्य, दीर्घायु, आनन्द, चहुँओर सफलता, मानसिक सन्तुलन, शान्ति तथा अन्तिम रूप से अमरत्व प्रदान करे, वह योग कहलाता है।

सन्तुलित विकास, चहुँओर सफलता, स्वास्थ्य एवं जीवन की पूर्णता योग से प्राप्त होने वाले मुख्य लाभ हैं।

किसी भी योग की साधना नियमित तथा क्रमबद्ध रूप से की जानी चाहिए तथा इसे सांसारिक प्रलोभनों से पूर्ण विरक्ति के साथ करना चाहिए।

योग कई प्रकार के हैं और ये व्यक्ति के व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न पहलुओं के विकास में सहायता करते हैं। हठ योग और प्राणायाम स्वास्थ्य और शरीर की पूर्णता की प्राप्ति हेतु सहायक होते हैं। लेकिन स्वर योग जीवन के मूल रहस्यों की गहराई में जाता है और व्यक्ति को प्रत्येक कार्य में पथ-प्रदर्शन करता है तथा कई मामलों में पूर्व से सावधान भी करता है।

जीवन में सफलता, सम्पत्ति का संग्रह तथा मानसिक शान्ति की प्राप्ति व्यक्ति के स्वास्थ्य और कर्मों पर निर्भर है। स्वर योग इन दोनों को ही नियन्त्रित करता है। यह भविष्य में होने वाले रोगों से सावधान करता है तथा व्यक्ति के भीतर छिपे रोगों की औषधि भी बतलाता है। यह नये कार्य के सम्पादन हेतु सही समय भी बताता है जिससे उस कार्य में अधिकतम सफलता प्राप्त की जा सके। अतः स्वर योग स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य, सफलता और सम्पत्ति, अनन्त शान्ति एवं अमरत्व का रहस्यमय विज्ञान है।

अध्याय ३

प्राण और इसके विभाग

प्राण वह नाम है, जो विश्व के मूल आधार को प्रदान किया गया है, जो कि सभी क्रियाकलापों और ऊर्जा का अवलम्बन है। हम जो वायु श्वास के साथ भीतर लेते हैं, प्राण इस वायु के साथ भीतर भ्रमण करता है; लेकिन न तो यह वायु है और न ही वह इसका कोई घटक है।

प्रत्येक बार भीतर ली गयी श्वास के साथ मनुष्य अपने संस्थान में प्रचुर मात्रा में प्राण खींचता है। मात्र चूँकि इसमें प्राणवायु होती है, इसलिए यह जीवन को अवलम्बन प्रदान नहीं कर सकती, न ही इसके द्वारा यह स्थूल भौतिक शरीर को बनाये रख सकती है। इन कार्यों के लिए इसमें प्रचुर मात्रा में प्राण होना चाहिए। यदि वायु में उपस्थित प्राणवायु इस स्थूल भौतिक शरीर को बनाये रखने में सहायता और अवलम्बन प्रदान करती है, तो वह इसमें उपस्थित प्राण के कारण। वह प्राण जो वैज्ञानिकों की पकड़ से बाहर है, वह सूक्ष्म शरीर तथा ज्ञानेन्द्रियों को पोषण देता है। लिंग शरीर डाक्टरों के परीक्षणों से बाहर है।

रोग का मूल अनिवार्यतः सूक्ष्म शरीर में होता है। इसी कारण चिकित्सक इसकी पहचान करने में असमर्थ रहते हैं। लेकिन प्राण सूक्ष्म चक्रों में गहरे जा सकते हैं और रोग का इस प्रकार उपचार करके स्वास्थ्य के निम्न स्तर को उठा कर उसके वास्तविक स्तर पर ले आते हैं।

प्राण भौतिक शरीर के नाड़ी-संस्थान का पोषण करते हैं और मन द्वारा इसका उपयोग किया जाता है तथा संकल्प शक्ति और विचार आदि द्वारा इसका उपभोग किया जाता है। यहाँ तक कि हमारी शारीरिक क्रियाओं, मांसपेशियों तथा अंगों के संचालन हेतु नाड़ी शक्ति, जो कि प्राण ही है, के कुछ अंश की आवश्यकता होती है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि हम ब्रह्माण्ड से अपने प्राण की आपूर्ति श्वसन-संस्थान द्वारा करते हैं- हमें यह जानना चाहिए कि हम अपने श्वसन-संस्थान को किस प्रकार स्वस्थ रखें तथा यह कि किस प्रकार प्राण हमारे कार्यों में सहायता करता है और हमारे शरीर में किस प्रकार परिभ्रमण करता है।

नाड़ियाँ

नाड़ी प्राण हेतु वाहन है। जिस प्रकार रक्त का संचरण छोटी तथा बड़ी रक्त-वाहिनियों में होता है, उसी प्रकार नाड़ियों द्वारा प्राण हमारे शरीर के विभिन्न भागों में ले जाया जाता है।

मानव-शरीर में ७२,००० नाड़ियाँ हैं। वे सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित हैं तथा हम उन्हें भौतिक नेत्रों से नहीं देख सकते। तो भी हम सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा इन नाड़ियों में प्राण के आवागमन का अनुभव कर सकते हैं। ये आन्तरिक अथवा सूक्ष्म शरीर में व्याप्त हैं और प्राण के संचरण पर निर्भर हैं। उनका उद्भव नाभि-क्षेत्र कन्द-स्थान से होता है।

मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी, सर्प शक्ति के स्थान पर एक नाड़ी है जो सर्प की भाँति कुण्डली मारे हुए है। यहाँ से २० नाड़ियों का उद्भव होता है। इनमें से दस ऊपर की ओर जाती हैं और दस नीचे की ओर।

यहाँ एक चक्र है जो दस नाड़ियों से निर्मित है। ये हैं-इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अलम्बुषा, कुहू, शाकिनी तथा शारदा।

उपरोक्त दस में से इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना अपने भीतर मरुत अथवा जीवन की श्वास ले कर जाती हैं।

सुषुम्ना का पथ काल का पथ कहलाता है और यह ब्रह्मरन्ध्र को जाता है। ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् वह द्वार जो चिदाकाश अथवा ब्रह्मलोक, परम चेतना जो अद्वैत है, को जाता है।

पूषा तथा अलम्बुषा नेत्र से, गान्धारी तथा हस्तिजिह्वा कर्ण से, शाकिनी पीनियल ग्रन्थि के ऊपर स्थित छिद्र से, कुहू गुदा से तथा शारदा मुख से सम्बन्धित है।

श्वास के विभाग

हम श्वास लेने के द्वारा वायु के साथ जिस प्राण अथवा जीवन शक्ति को पुनः दस विभागों में बाँटा गया है, लेकिन इनमें विभाजित करने के बाद भी उसकी पूर्णता बनी रहती है। ये विभाग जीव के क्रियाकलापों के अनुसार किये गये हैं जिनका संचालन जीव प्राण के द्वारा संचालित करता है। ये हैं-प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनंजय ।

प्राण इनमें सर्वोच्च है और यह निम्न अंगों में कार्य करता है-मुख सम्बन्धी क्षेत्र, नासा-रन्ध्रों, नाभि तथा हृदय-कमल। यह ध्वनि उच्चारण, श्वास, श्वास की अल्पता तथा कफ हेतु कारण है।

अपान गुदा, शिश्न तथा उसके आसपास कार्य करता है। यह जाँघों, अण्डकोष तथा नाभि-गुहा के नीचे के भाग में भी विचरण करता है। यह जाँघों, अण्डकोष में तथा नाभि-गुहा के नीचे स्पन्दित होती है। यह शरीर के भागों तथा ऊपरी अंगों को सक्रिय करता है तथा मूल-मूत्र के विसर्जन तथा बाह्य निष्कासन में सहायता करता है।

जो कार्य प्राण और अपान अपने सम्बन्धित क्षेत्रों में सम्पादित नहीं करते, उनका नियन्त्रण व्यान करता है। यह नेत्रों, कर्ण, कमर, नासा-रन्ध्रों तथा गुप्तांग-क्षेत्र में विचरण करता है।

समान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है तथा यह समस्त ७२,००० नाड़ियों में परिभ्रमण करता है और अपने साथ जठराग्नि ले कर जाता है। यह मनुष्य द्वारा ग्रहण किये गये भोजन के पाचन में तथा लिये गये सम्पूर्ण भोजन के उपयोग में सहायता करता है। उदान का कार्यक्षेत्र सभी जोड़ एवं गला है। यह विभिन्न अवयवों को कार्य करने में सहायता करता है।

नाग वाणी पर नियन्त्रण करता है, जब कि कूर्म पलक झपकने हेतु उत्तरदायी है। कृकल भूख और प्यास का कारण है। देवदत्त विस्तार जैसे-जंभाई आदि से सम्बन्धित है। धनंजय कान बन्द करने पर भी जो ध्वनि सुनायी देती है, उसका कारण है।

शरीर की स्वच्छता

ऊपर हमने देखा कि प्राण के हमारे प्रत्येक क्रियाकलाप से जुड़े होने के गुण के कारण प्राण का उचित प्रकार से कार्य करना कितना महत्त्वपूर्ण है। इसलिए हमें इस भौतिक तथा सूक्ष्म शरीर को सदैव स्वच्छ रखना चाहिए तथा नाड़ियों में प्राण के प्रवाह में सहायता करनी चाहिए, अन्यथा इनसे सम्बन्धित कार्यों में बाधा पड़ेगी और शरीर रोगी हो जायेगा।

प्राण की सहायता से शरीर और मन को स्वच्छ रखने की कला तीन अवस्थाओं-पूरक, रेचक और कुम्भक से निर्मित है।

प्रारम्भ करते समय इडा नाड़ी (चन्द्र नाड़ी, बायाँ नासा-रन्ध्र) से श्वास भीतर लें और पिंगला नाड़ी (सूर्य नाड़ी अथवा दाहिना नासा-रन्ध्र) से श्वास बाहर छोड़ें। सर्वप्रथम यह अभ्यास दिन में तीन बार-प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल एक माह तक करें। इसे २० बार से धीरे-धीरे १०० बार तक दिन-प्रतिदिन बढ़ायें । प्रत्येक बार १०० तक हो जाने पर आगे बढ़ना है। एक माह तक मात्र यही अभ्यास करना है।

पद्मासन में बैठ कर उड्डियान बन्ध लगायें। सहज रूप से श्वास बाहर निकाल दें। किसी प्रकार की आवाज न करें और न ही बलपूर्वक करें। श्वास को बाहर निकालते समय धीरे-धीरे बिना झटके के रेचक करें और लक्ष्य पाँचवाँ निलय अथवा सोलहवीं कला को रखें। यह रेचक है। यह सभी पापों को भस्मीभूत करता और आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान करता है।

पूरक का अर्थ है-भरना। पूरक करते समय श्वास भीतर लेते हुए सम्पूर्ण शरीर को जीवन अथवा जीवन शक्ति से भरना चाहिए। यह ध्यान रखें कि इस क्रिया में शरीर का प्रत्येक अंग प्राण अथवा जीवन शक्ति से परिपूर्ण हो जाये। पूरक भी बिना शीघ्रता के, बिना झटके के किया जाना चाहिए।

पूरक तब तक किया जाना चाहिए, जब तक हमें सिर के शीर्ष में इसका अनुभव होने लगे। यह पौरुष, साहस, शक्ति, वृद्धि, पूर्णता तथा व्यक्तित्व में दिव्य कान्ति प्रदान करता है।

इसके पश्चात् तीसरी क्रिया है-ली गयी श्वास को रोक कर रखना। शरीर को हिलाये-डुलाये बिना श्वास को रोकने का प्रयत्न करें। इसे कुम्भक कहते हैं। यदि आपको कष्ट होने लगे, तो बिना किसी भय अथवा चिन्ता के श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। श्वास भीतर रोकने में अपनी संकल्प शक्ति का प्रयोग करें। कुम्भक के समय निरन्तर श्वास भीतर ले कर बल-प्रयोग न करें। कुम्भक से शरीर के भीतर उपस्थित समस्त विष जल जाते हैं, भोजन का पाचन होता है तथा यह सभी दुर्गुणों का नाश करता है।

कुम्भक का अभ्यास दूसरे माह से प्रारम्भ करना चाहिए, इससे पूर्व नहीं। सम्पूर्ण प्रथम माह श्वास भीतर लेने (पूरक) और बाहर छोड़ने (रेचक) में ही लगाया जाना चाहिए। इससे नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं और कुम्भक हेतु तैयार हो जाती हैं।

प्राणायाम हेतु नियम

जो प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, उन्हें अपने गुरु से प्राप्त निर्देशों के साथ-साथ निम्न नियमों का पालन करना चाहिए :

१. सात्त्विक आहार लें जिसमें मिर्च, नमक, खट्टे तथा तीखे पदार्थ न हों।

२. शराब, मांस, तम्बाकू आदि से परहेज रखें तथा ब्रह्मचर्य का पालन करें।

३. कभी भी ठण्ढे पानी से तथा नदी अथवा तालाब में स्नान न करें। गुनगुने पानी से स्नान करें। चूँकि प्राणायाम से आन्तरिक रूप से अत्यधिक उष्णता उत्पन्न होती है; इसलिए ठण्डे पानी से स्नान करने पर सर्दी-खाँसी हो सकती है।

४. कुम्भक का अभ्यास सामान्यतया प्रातःकाल शीघ्र एवं सन्ध्या को करना चाहिए, जब वातावरण सामान्यतया शीतल होता है।

५. यह अधिक अच्छा होगा, यदि प्राणायाम का अभ्यास नदी के किनारे, बगीचे में अथवा योगियों द्वारा बताये गये एकान्त स्थान में किया जाये।

६. प्राणायाम का अभ्यास तब करना चाहिए, जब शुद्ध और ताजी वायु बह रही हो तथा यह शहर के प्रदूषण से मुक्त हो, अन्यथा आप अपने संस्थान में वायु में उपस्थित अशुद्धियों को लेंगे।

अध्याय ४

सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि

पिछले अध्याय में हमने श्वास तथा नाड़ियों के विभिन्न विभागों को देखा। नाभि से ऊपर की ओर जाने वाली दस नाड़ियों में से तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं-इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना। दीर्घायु और शान्ति से पूर्ण स्वस्थ जीवन जीना, जो हमें अमरत्व प्रदान करता है, वह इन तीनों नाड़ियों में श्वास के प्रवाह की प्रकृति तथा जिस लय और सहजता से श्वास प्रवाहित होती है, उस पर निर्भर करता है।

इडा अथवा चन्द्र नाड़ी बायें नासा-रन्ध्र में श्वास के प्रवाह से पहचानी जाती है तथा पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी दाहिने नासा-रन्ध्र में श्वास के प्रवाह से पहचानी जाती है।

ये दोनों नाड़ियाँ बारी-बारी से कार्य करती हैं। एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में प्रवाह के परिवर्तन के समय को विषवत् कहते हैं। परिवर्तन का यह समय बड़ा ही अशुभ होता है। विषवत् के समय कोई भी अच्छा अथवा बुरा कार्य नहीं करना चाहिए।

प्रवाह-परिवर्तन के समय यदि नयी नाड़ी में कोई अवरोध होता है, तो स्वाभाविक रूप से यह अवरोधक पदार्थ बलपूर्वक बाहर आता है और हलके अथवा जोर से छींक होती है और वह नासा-रन्ध्र स्वच्छ हो जाता है। इसी कारण छींक को अशुभ मानते हैं; क्योंकि यह विषवत् की ओर संकेत करती है।

दोनों नाड़ियों में से प्रत्येक बारी-बारी से एक-एक घण्टा अथवा ढाई घटिका तक कार्य करती है। यह क्रम सूर्योदय से प्रारम्भ होता है।

इडा तथा पिंगला संवेदना की कड़ियाँ नहीं हैं। भौतिक शरीर में ये प्रायोगिक रूप से बायीं और दायीं संवेदनात्मक श्रृंखलाओं के सदृश हैं।

इडा दाहिने अण्डकोष से तथा पिंगला बायें अण्डकोष से प्रारम्भ होती है। ये मूलाधार में जा कर सुषुम्ना में मिलती हैं और एक ग्रन्थि बनाती हैं। इन तीनों नाड़ियों के मिलन-स्थल को मुक्तात्रिवेणी कहा जाता है। गंगा, यमुना और सरस्वती क्रमशः पिंगला, इडा तथा सुषुम्ना में मिलती हैं। इनके मिलन-स्थल को ब्रह्म ग्रन्थि कहा जाता है। ये अनाहत चक्र तथा आज्ञा चक्र में पुनः मिलती हैं।

सुषुम्ना

जिन तीन मुख्य नाड़ियों के बारे में हम विचार कर रहे हैं, उनमें से सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जब श्वास का प्रवाह प्रत्येक श्वास के पश्चात् दोनों नासा-रन्ध्रों में शीघ्र परिवर्तित हो, तो उसे सुषुम्ना कहते हैं। यह सभी कार्यों के लिए अशुभ होती है। प्रवाह की इस स्थिति को विषवत् अर्थात् सभी कर्मों को नष्ट करने वाली कहते हैं।

यह मन के विचलन अथवा विक्षेप, बेचैनी, शीघ्रता, अस्थिरता, दुविधा तथा शरीर की दोषपूर्ण स्थिति को बताती है। इस स्थिति में व्यक्ति को सलाह दी जाती है कि वह विश्राम करे और मन का सन्तुलन प्राप्त करे। इस समय कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह इस बात का संकेत है कि मन अपने लक्ष्य पर स्थिर अथवा दृढ़ नहीं है तथा मन में संशय अथवा दुविधा है। जल्दबाजी में किये गये कार्य पर सदैव बाद में पछताना पड़ता है।

एक दूसरी प्रकार की सुषुम्ना भी है जिसमें श्वास का प्रवाह दोनों नासा-रन्ध्रों से निरन्तर होता रहता है। इसे एक और तरीके से भी पहचाना जाता है। इसमें बिना झटके के एक-समान प्रवाह होता रहता है और मन की एकाग्रता षट् चक्रों में से किसी एक पर केन्द्रित होती है।

सुषुम्ना के समय ईश्वर की धारणा और ध्यान करने का बहुत ही अच्छा सुअवसर है; क्योंकि इस समय मन स्वाभाविक रूप से शान्त और स्थिर होता है। इस समय कोई अन्य कार्य नहीं करना चाहिए।

सुषुम्ना में श्वास के प्रवाह को निरन्तर बनाये रखना अत्यन्त कठिन है; इसलिए यदि थोड़े समय के लिए भी सुषुम्ना का प्रवाह हो, तो उसका सदुपयोग अच्छे कार्य हेतु किया जाना चाहिए।

नाड़ियों के लक्षण

इडा शीतल है और पिंगला उष्ण है। पिंगला भोजन का पाचन करती है। इडा पीले रंग की शक्ति रूपा है। पिंगला लाल रंग की रुद्र रूपा है। इडा और पिंगला काल को बताती हैं, जब कि सुषुम्ना काल का भक्षण करती है। इडा में श्वास अमृत की भाँति होती है। यह संसार की महान् पोषक है। शुक्ल पक्ष में इडा शक्तिशाली होती है तथा कृष्ण पक्ष में पिंगला। दायें भाग में सदैव संसार का जन्म होता है।

चन्द्र नाड़ी को स्त्रीलिंग की तरह माना जाता है। यह काले रंग तथा राशि-चक्र के स्थिर चिह्नों से संयुक्त है। सूर्य नाड़ी को पुल्लिंग की तरह माना जाता है तथा यह श्वेत रंग और राशि-चक्र के चलायमान चिह्नों से संयुक्त है। अग्नि नाड़ी (सुषुम्ना) को नपुंसक माना जाता है तथा यह राशि-चक्र के सामान्य प्रतीकों से संयुक्त है।

चन्द्र नाड़ी का प्रभाव पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों पर होता है। सूर्य नाड़ी पूर्वी और उत्तरी भागों पर प्रभाव डालती है।

चन्द्र अथवा इडा तृतीय निलय के ठीक ऊपर है तथा सूर्य अथवा पिंगला सूर्य तन्त्र के ठीक नीचे है।

जब प्राण स्वतः सुषुम्ना में प्रवाहित होते हैं, तो व्यक्ति बाह्य जगत् को भूल जाता है। यह समाधि हेतु तैयारी है और यह सर्वश्रेष्ठ है।

काल पर विजय

वह मनुष्य जो तीनों नाड़ियों पर नियन्त्रण करने में प्रवीण है तथा जो सुषुम्ना में प्राण को स्थिर कर सकता है, वह मन को शुद्ध कर लेता है और ऐसा मनुष्य ही काल पर विजय प्राप्त कर लेता है।

वह मनुष्य जिसने इस प्रकार प्राण को सुषुम्ना में स्थिर कर लिया हो, उसे इसे ब्रह्मरन्ध्र की ओर ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी वह समाधि अथवा परम चेतनावस्था का अनुभव कर सकेगा।

योगी को अपनी मृत्यु के समय का ज्ञान होता है। वह इस समय अपने प्राणों को सुषुम्ना में ले जाता है और यहाँ से उन्हें ब्रह्मरन्ध्र में ले जाता है तथा काल या मृत्यु पर विजय पा लेता है।

मृत्यु अथवा समय को काल कहते हैं। बहुत-सी घटनाएँ काल से जुड़ी हैं। इसलिए इसे 'कालयति इति कालः' कहते हैं। जन्म तथा मृत्यु काल में ही हैं। समय का अतिक्रमण करना अर्थात् अमरत्व-प्राप्ति हेतु जन्म तथा मृत्यु से परे जाना।

सूर्य तथा चन्द्र-ये दोनों नाड़ियाँ समस्त प्राणियों के लिए दिन तथा रात्रि का निर्धारण करती हैं। जब वे कार्य करती हैं, तो दिन-रात एक के बाद एक करके आते-जाते हैं और इस प्रकार जीवन समाप्त हो जाता है। प्रत्येक बार जब आप श्वास बाहर छोड़ते हैं, आप ४ अंगुल श्वास खो देते हैं; क्योंकि श्वास भीतर लेते समय आप ८ अंगुल श्वास भीतर लेते हैं, जब कि छोड़ते समय १२ अंगुल श्वास बाहर निकालते हैं। नश्वरों में मुख्यतः चन्द्र नाड़ी कार्य करती है। चन्द्र नाड़ी के प्रवाह पर नियन्त्रण करके व्यक्ति अधिक जी सकता है। दोनों ही नाड़ियों सूर्य, चन्द्र पिंगला और इडा के प्रवाह को रोकने के द्वारा व्यक्ति बहुत अधिक काल तक जीवित रह सकता है।

सुषुम्ना काल का भक्षण करती है। यह महान् यौगिक रहस्य है। श्वास को सुषुम्ना में रोक कर व्यक्ति उत्तम स्वास्थ्य का उपभोग करता है और

अपने जीवन-काल में अनन्त काल तक की वृद्धि कर लेता है। श्वास को सुषुम्ना से शीर्ष में ले जाने के द्वारा व्यक्ति अमरत्व को प्राप्त करता है और अमृत का पान करता है।

जब आप मृत्यु से बचना चाहते हों, तो अपनी श्वास को सुषुम्ना में रोके रहें। मृत्यु आपसे दूर चली जायेगी।

इस प्रकार आप मृत्यु से बच सकते हैं और अच्छे स्वास्थ्य का उपभोग कर सकते हैं तथा अपने जीवन में अनन्त काल की वृद्धि कर सकते हैं।

अध्याय ५

स्वर विज्ञान

हमारे स्वस्थ जीवन एवं गतिविधि हेतु इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों में श्वास का प्रवाह विशेष महत्त्व रखता है। इस अध्याय में हम उपरोक्त नाड़ियों में श्वास के प्रवाह से सम्बन्धित कुछ और तथ्यों के बारे में पढ़ेंगे।

स्वर (प्रवाह) की अवधि

इडा और पिंगला-दोनों में से प्रत्येक सूर्योदय से प्रारम्भ हो कर एक घण्टे (ढाई घटिका) की अवधि तक चलती है। इस प्रकार एक दिन (२४ घण्टे) में श्वास १२ बार इडा से प्रवाहित होती है और १२ बार पिंगला से। यह श्वास और नाड़ियों की सामान्य क्रिया और साथ ही अच्छे स्वास्थ्य को भी इंगित करती है।

सामान्यतया जब व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक कार्यों में व्यस्त रहता है, तो सुषुम्ना नहीं चलती है। सुषुम्ना मात्र तभी चलती है, जब मन एकाग्र होता है और अपनी गुप्त वृत्तियों द्वारा नियन्त्रित होता है। यदि इसके विपरीत प्रकार की सुषुम्ना (झटके के साथ तेजी से श्वास के प्रवाह में परिवर्तन) उस समय चले, जब व्यक्ति का मन ध्यान करने की स्थिति में न हो तथा वह जाग्रत अवस्था में हो, तो यह श्वास के प्राकृतिक प्रवाह में किसी बाधा का सूचक है।

स्वस्थ प्रवाह (स्वर)

इडा और पिंगला में श्वास के प्रवाह को नियन्त्रित करने वाले नियमों के साथ-साथ चन्द्र दिवस भी नाड़ियों के कार्य को प्रभावित करते हैं; लेकिन इनसे उनकी अवधि में परिवर्तन नहीं होता।

इससे यह समझ में आता है कि चन्द्रमा मानव-मन पर बड़ा ही शक्तिशाली प्रभाव डालता है। पुरुषसूक्त में लिखा है: "चन्द्रमा मनसो जातः" -चन्द्रमा मन से (विराट् पुरुष के मन से) जन्मा है। ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा विराट् पुरुष के मन से नियन्त्रित है। जीवात्मा का मन विराट् पुरुष के मन का सूक्ष्म अंश है; इसलिए चन्द्रमा का मन के साथ सम्बन्ध है। इस कारण जीवात्मा स्वयं को चन्द्रमा द्वारा नियन्त्रित अनुभव करता है।

जब चन्द्रमा बढ़ता और घटता है, तो इसका मन से सम्बन्ध भी घटता-बढ़ता रहता है और इस प्रकार मन में एक संवेदनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। इसी कारण श्वास के प्रवाह और चन्द्र दिवस के मध्य सम्बन्ध है।

शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन इडा या चन्द्र नाड़ी या बायाँ स्वर (बायें नासा-रन्ध्र से श्वास का प्रवाह) प्रारम्भ होता है और यह प्रत्येक घण्टे पश्चात् इडा से पिंगला (दाहिना स्वर) और पिंगला से इडा में बदलता रहता है। यह क्रम तीन दिनों तक निरन्तर इसी प्रकार चलता रहता है। चौथे दिन (शुक्ल पक्ष की चतुर्थी) सूर्योदय के समय पिंगला नाड़ी (दाहिना स्वर) या सूर्य नाड़ी से श्वास का प्रवाह प्रारम्भ होता है और ऊपर बताये अनुसार इसमें क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार प्रत्येक पक्ष के चौथे दिन प्रातःकाल स्वर में परिवर्तन होता है। यदि किसी दिन प्रातःकाल इडा नाड़ी अथवा बायाँ स्वर चले, तो इसके चौथे दिन आप देखेंगे कि प्रात:काल सूर्योदय के समय दायाँ स्वर अथवा पिंगला नाड़ी चलेगी।

कृष्ण पक्ष में स्थिति इसके ठीक विपरीत होगी। कृष्ण पक्ष की प्रथमा को सूर्योदय के समय दायाँ स्वर अथवा पिंगला नाड़ी चलेगी तथा प्रत्येक घण्टे से यह ऊपर बताये अनुसार बदलता रहता है और चौथे दिन से सूर्योदय के समय इडा नाड़ी अथवा बायाँ स्वर चलता है।

संक्षेप में इडा और पिंगला का प्रवाह निम्नानुसार होता है :

शुक्ल पक्ष में इडा निम्न तिथियों को सूर्योदय के समय चलती है- प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा।

कृष्ण पक्ष में इडा निम्न तिथियों को सूर्योदय के समय चलती है- चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशी।

पिंगला निम्न दिनों में सूर्योदय के समय से प्रारम्भ होती है :

कृष्ण पक्ष-प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावास्या ।

शुल्क पक्ष-चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी।

उपरोक्त प्रकार से यदि नाड़ी का प्रवाह होता है, तो यह स्वस्थ मनुष्य के श्वास के स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रवाह को इंगित करता है। यदि स्थिति इसके विपरीत है, तो यह शरीर में किसी दोष की ओर संकेत करता है। ये दोष अथवा रोग विकसित हों और गम्भीर रूप लें, इससे पहले ही इन्हें श्वास का प्रवाह (स्वर) बदल कर ठीक किया जा सकता है। यह कार्य बिना औषधियों की सहायता के प्राण के सहयोग से किया जाता है।

स्वर का महत्त्व

सूर्योदय के समय इडा नाड़ी अथवा बायाँ स्वर चलना तथा सूर्यास्त के समय पिंगला नाड़ी अथवा दायाँ स्वर चलना शुभ है। यदि स्वर इसके विपरीत चले, तो अस्वस्थता और हानिकारक परिणाम होते हैं।

यदि सारे दिन इडा चले और सारी रात पिंगला, तो यह मनुष्य को महान् योगी बनाती है।

यदि शुक्ल पक्ष में सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को चन्द्र नाड़ी अथवा बायाँ स्वर चले, तो सभी कार्यों में सफलता मिलती है।

इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में रविवार, मंगलवार और शनिवार को सूर्य नाड़ी अथवा दायाँ स्वर चल रहा हो, तो यह चतुर्दिक् सफलता का द्योतक है।

निम्न स्वर भी अच्छे हैं जैसे प्रातःकाल एवं मध्याह्न में इडा (बायाँ स्वर) तथा सन्ध्याकाल में पिंगला नाड़ी (दायाँ स्वर) का चलना ।

पुनः इडा और पिंगला में श्वास का प्रवाह पूर्व दिशा में उदित होने वाली राशियों से सम्बन्धित है। जब वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन राशियाँ पूर्व में उदित हों, तो इडा (बायाँ स्वर) चलना श्रेष्ठ है और जब शेष छह राशियाँ पूर्व में उदित हों, तो पिंगला (दायाँ स्वर) चलना श्रेष्ठ है।

स्वर-परिवर्तन

ऊपर शुभ तथा अशुभ स्वरों के बारे में बताया गया है, जिससे कि व्यक्ति उचित स्वर को चला कर अपने सभी कामों में सफलता प्राप्त कर सके। इस हेतु स्वर-परिवर्तन की विभिन्न विधियाँ जानना आवश्यक है। इनमें से कुछ निम्न हैं :

१. जिस नासा-रन्ध्र में श्वास का प्रवाह बन्द करना हो, उसे नरम रुई की गोली से बन्द कर दें। जैसे यदि आपका बायाँ स्वर चल रहा हो और आप दायाँ स्वर चलाना चाहते हैं, तो आप बायें नासा-रन्ध्र को रुई की गोली डाल कर उसे बन्द कर दें। थोड़ी देर बाद आपका स्वर बदल जायेगा। दायें स्वर के लिए इसके विपरीत करें।

२. जिस नासा-रन्ध्र में श्वास का प्रवाह हो रहो हो, उसे अँगूठे से बन्द कर दें। कुछ देर पश्चात् श्वास का प्रवाह अन्य नासा-रन्ध्र से होने लगेगा।

३. जब इडा (बायाँ स्वर) प्रवाहित हो रहा हो, सुखासन अथवा पद्मासन में बैठ कर बायीं हथेली को भूमि पर रखें और बायीं कोहनी को पसलियों के ठीक नीचे बायीं ओर हलके दबाव से दबायें। इससे श्वास का प्रवाह बायें नासा-रन्ध्र से दाहिने नासा-रन्ध्र में होने लगेगा। ऐसा ही पिंगला के प्रवाह के समय भी करें। बस, उस समय दायें हाथ को भूमि पर रख कर दायीं कोहनी से दबाव डालना होगा।

४. आप योगदण्ड (यह लगभग हाथ-भर लम्बा होता है और इसका हत्था 'यू' के आकार का होता है) का भी प्रयोग कर सकते हैं। अपनी बगल से थोड़ा नीचे योगदण्ड के 'यू' के आकार वाले भाग से थोड़ा दबाव डालें और थोड़ा उस ओर झुकें। श्वास का प्रवाह दूसरी ओर से होने लगेगा। यही कार्य लम्बे दण्ड से या चलते हुए अथवा खड़े रह कर किया जा सकता है।

५. मन को भी स्वर-नियन्त्रण हेतु प्रशिक्षित किया जा सकता है। जिस प्रकार मात्र मन के विचार से शरीर की पेशियों को नियन्त्रित करते हैं, उसी प्रकार एक नासा-रन्ध्र से दूसरे नासा-रन्ध्र में स्वर का प्रवाह भी परिवर्तित किया जा सकता है।

६. यदि आप बायीं करवट लेट जायें, तो दायाँ स्वर चलने लगेगा और यदि आप दायीं करवट लेट जायें, तो बायाँ स्वर चलने लगेगा।

जब भी आवश्यकता हो, आपको स्वर-परिवर्तित कर लेना चाहिए।

सुषुम्ना के प्रवाह को परिवर्तित करना थोड़ा कठिन है और इसमें प्रवाह को निरन्तर बनाये रखना भी कठिन है।

सुषुम्ना नाड़ी में श्वास-प्रवाह

किसी भी नाड़ी का प्रवाह सुषुम्ना में परिवर्तित करने हेतु निम्न विधियाँ सहायक होंगी :

१. पीठ के बल भूमि पर लेट जायें। तकिये का प्रयोग न करें। नासिका के अग्रभाग अथवा भ्रूमध्य (त्रिकुटी) पर ध्यान करें। सुषुम्ना चलने लगेगी।

२. सुखासन, पद्मासन अथवा सिद्धासन में मेरुदण्ड सीधा रख कर बैठें। कुछ चक्र भस्त्रिका करें। ऊपर बताये अनुसार ध्यान का अभ्यास करें। सुषुम्ना प्रवाहित होने लगेगी।

३. षट् चक्रों में से किसी एक पर धारणा करने से भी सुषुम्ना के प्रवाह मैं सहायता मिलती है।

मेरुदण्ड एकदम सीधा और स्थिर होना, ध्यान की तीव्रता तथा विचारों में स्थिरता-ये तीनों ही सुषुम्ना में श्वास के प्रवाह को सुनिश्चित करते हैं। ये तीनों ही मात्र इस प्रवाह को निरन्तर बनाये रखने में सहायक हैं। यदि उपरोक्त तीनों में से एक भी बाधित हो, तो श्वास बायें अथवा दायें नासा-रन्ध्र से प्रवाहित होने लगती है।

स्वर का उपयोग

सूर्य नाड़ी के प्रवाह के समय शक्ति, जीवन शक्ति और अच्छा पाचन सुनिश्चित होता है। चन्द्र नाड़ी के समय पाचन तो होता है; लेकिन संस्थान में विष बनता है। सुषुम्ना मोक्ष की दाता है।

सोते समय बायीं करवट लेटने से सूर्य नाड़ी कार्य करती है और मन को पूर्ण विश्राम प्राप्त होता है; क्योंकि चन्द्र नाड़ी को इस समय विश्राम मिल जाता है। यदि सोते समय चन्द्र नाड़ी काम करे, तो निद्रा बाधित होती है और स्वप्न दिखायी देते हैं।

हिता नाड़ी (जिसमें मन गहन निद्रा के समय विश्राम करता है) थोड़ी बायीं ओर है और मनुष्य की निद्रा के समय चन्द्र नाड़ी के प्रवाह से इसमें बाधा पड़ती है, तो स्वप्न दिखायी देते हैं। इसलिए इसमें सोते समय रुकावट नहीं आनी चाहिए।

इसलिए आपको सदैव बायीं करवट सोना चाहिए, जिससे सूर्य नाड़ी (दायाँ स्वर) काम करें। इस प्रकार आपको दो लाभ प्राप्त होंगे गहरी नींद तथा आदर्श पाचन, जिससे आपको स्वास्थ्य, शक्ति तथा स्फूर्ति प्राप्त होगी।

यदि आप दायीं करवट सोयेंगे, तो आप अपने निम्न मन को जाग्रत रख कर अपनी चेतना को जाग्रत रख सकते हैं। लेकिन ऐसा आप तभी कर सकते हैं, जब आप मन के विचलन और कामनाओं से मुक्त होंगे और तब आपको निश्चय ही कोई स्वप्न नहीं आयेगा।

जब आप व्यक्तिगत अथवा समाज के कल्याण हेतु किसी कार्य का आरम्भ करें, तो यह ध्यान रखें कि उस समय इडा (बायाँ स्वर) चल रही हो। ऐसे कुछ कार्य नीचे दिये जा रहे हैं :

जीवन के नये क्षेत्र में प्रवेश करना, शास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ करना, यात्रा प्रारम्भ करना; मित्रों, सम्बन्धियों तथा वरिष्ठ जनों से मिलना, भवन और मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करना, कृषि-कार्य प्रारम्भ करना, नयी नियुक्तियाँ लेना, विवाह, नवीन वस्त्र, आभूषणों को धारण करना, पौष्टिक औषधियों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करना।

सूर्य नाड़ी : जब आप राजसिक अथवा तामसिक देवताओं से सम्बन्धित मन्त्र शास्त्र (काला जादू) का अध्ययन प्रारम्भ करें, भोजन तथा स्नान करें, उस समय सूर्य नाड़ी (दाहिना स्वर) चलनी चाहिए।

संक्षेप में वे कार्य जो स्थायी रूप से अच्छे फल प्रदान करें, उन्हें इडा (बायाँ स्वर) के प्रवाह के समय प्रारम्भ करें तथा वे सभी कार्य जो प्रकृति में क्षणिक तथा अस्थायी हो, उन्हें सूर्य नाड़ी (दायाँ स्वर) चल रही हो, तब प्रारम्भ करें।

सुषुम्ना को सदैव आध्यात्मिक कल्याण, धारणा एवं ध्यान तथा कुम्भक हेतु आरक्षित रखना चाहिए।

नोट : इडा और पिंगला के समय किये जाने वाले कार्यों की सूची पुस्तक में आगे दी गयी है।

अध्याय ६

तत्त्व

यह सृष्टि तीन गुणों (सत्त्व, रज और तम) एवं पंच तत्त्वों की लीला मात्र है। पंच तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु । ब्रह्म लोक से ले कर पृथ्वी लोक तक प्रत्येक वस्तु उपरोक्त तीनों गुणों तथा पंच तत्त्वों से निर्मित है।

विभिन्न लोकों के मध्य मात्र नाड़ियों में भिन्नता होती है। प्रत्येक बार श्वास भीतर लेने और बाहर छोड़ने की क्रिया के साथ-साथ इन तत्त्वों में भी बदलाव आता है। तत्त्वों की गतिविधियों में विशेष सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के साथ स्वरों का अच्छा ज्ञान व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले कर जाता है। तमिल में एक कहावत है- **"सारं पारप्पान परं पारप्पान"**, जिसका अर्थ है- "वह जो तत्त्वों के परिवर्तन को अच्छी तरह देखता है तथा सृष्टि के क्षेत्र में उनके विभिन्न प्रभावों को जानता है, वह परमात्मा को देखता है।"

पंच तत्त्व

पृथ्वी : पृथ्वी तत्त्व का स्थान है मूलाधार चक्र। इसका रंग पीला है। इसकी तन्मात्रा है गन्ध। नासिका ज्ञानेन्द्रिय तथा गुदा कर्मेन्द्रिय इससे सम्बन्धित हैं। जब यह तत्त्व अधिक हो जाता है तो पीलिया, मानसिक विकलांगता, भय आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसका बीजाक्षर है 'ल'।

जल : इसका स्थान है स्वाधिष्ठान्न चक्र। यह जननेन्द्रिय के मूल में स्थित है। यह श्वेत रंग का है। यह जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय तथा जनन इन्द्रियों कर्मेन्द्रिय से सम्बद्ध है। इस तत्त्व की वृद्धि से भ्रम, अचेतनता आदि उत्पन्न होते हैं। इस तत्त्व का बीजाक्षर है 'वं'।

अग्नि : अग्नि तत्त्व का स्थान है मणिपूर चक्र, जो नाभि में स्थित है। यह तत्त्व लाल रंग का है। यह चक्षु ज्ञानेन्द्रिय तथा पैर कर्मेन्द्रिय से सम्बद्ध है। क्रोध, शरीर की गन्ध आदि इससे सम्बन्धित हैं। इस तत्त्व का बीजाक्षर "है।

वायु : वायु तत्त्व का स्थान अनाहत चक्र है, जो हृदय-कमल में स्थित है। यह हरा अथवा नीले रंग का है। इसकी तन्मात्रा अथवा गुण स्पर्श है। यह त्वचा ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ कर्मेन्द्रिय से सम्बन्धित है। इस तत्त्व के असन्तुलन से अस्थमा, टी.बी. आदि रोग होते हैं। इस तत्त्व का बीजाक्षर है 'यं'।

आकाश: इसका स्थान है गले में स्थित विशुद्धि चक्र। काला रंग अथवा काले धब्बे इसका रंग है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि इसका रंग गहरा नीला है। इसकी तन्मात्रा 'शब्द' है। यह कर्ण ज्ञानेन्द्रिय तथा जिह्वा कर्मेन्द्रिय से सम्बद्ध है। इसका बीजाक्षर 'हं' है।

तत्त्वों पर ध्यान

विभिन्न तत्त्वों में अवरोध अथवा गड़बड़ी के कारण जो विभिन्न दोष और रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें सम्बन्धित तत्त्वों पर उचित प्रकार से ध्यान करने के द्वारा दूर किया जा सकता है।

पृथ्वी तत्त्व पर ध्यान : पृथ्वी तत्त्व का ध्यान पीले रंग के चतुर्भुज पर, जो मीठी सुगन्ध दे रहा हो, किया जाता है। इस प्रकार ध्यान करते हुए बीजाक्षर 'लं' का उच्चारण कीजिए। आपका ध्यान मूलाधार चक्र पर केन्द्रित होना चाहिए।

इस प्रकार निरन्तर ध्यान करने पर शरीर स्वर्णिम आभा युक्त तथा दैवी तेज सम्पन्न हो जाता है तथा वह बलिष्ठ देह का स्वामी हो जाता है। आपको मानसिक नेत्रों द्वारा उपरोक्त बताये अनुसार बार-बार पृथ्वी तत्त्व को देखना चाहिए।

अग्नि तत्त्व पर ध्यान : मणिपूर चक्र में लाल रंग के त्रिकोण का ध्यान करें और बीजाक्षर 'रं' का जप करें। इस प्रकार ध्यान करने वाले साधक को किसी भी प्रकार की अग्नि से कोई भय नहीं रहता। उस पर अग्नि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी पाचन शक्ति अद्‌भुत होती है।

वायु तत्त्व पर ध्यान : अनाहत चक्र पर हरे रंग के गोलाकार चक्र का ध्यान करें। बीजाक्षर 'यं' का जप करें। इस प्रकार वायु तत्त्व का ध्यान करने वाले साधक को सिद्धि मिलने पर वायु में कहीं भी भ्रमण करने की शक्ति आ जाती है।

आकाश तत्त्व पर ध्यान : इसके लिए विशुद्ध चक्र में काले रंग के निराकार पदार्थ का ध्यान करें अथवा काले बिन्दु का ध्यान करें। बीजाक्षर 'ह' का जप करें।

आकाश तत्त्व पर ध्यान में सिद्धि से साधक त्रिकालज्ञ हो जाता है तथा उसे सभी सिद्धियों का ज्ञान हो जाता है।

जल तत्त्व : ब्राह्ममुहूर्त में स्वाधिष्ठान चक्र में श्वेत अर्ध चक्र पर ध्यान करें। इस ध्यान में सिद्धि से साधक भूख और प्यास से मुक्त हो जाता है और उस पर जल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ध्यान के समय बीजाक्षर 'व' का जप करें।

विभिन्न तत्त्वों पर उचित प्रकार से ध्यान करने पर इन तत्त्वों के कारण होने वाले विभिन्न रोग ठीक हो जाते हैं।

ध्यान हेतु सर्वश्रेष्ठ काल ब्राह्ममुहूर्त है तथा इस हेतु सर्वश्रेष्ठ आसन पद्मासन अथवा सिद्धासन है।

किसी विशेष समय पर कौन-सा तत्त्व उदित हो रहा है, यह जानने की बहुत-सी विधियाँ हैं। क्योंकि तत्त्व हमारी गतिविधियों पर शासन करते हैं, इसलिए इन विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है। हमारी प्रत्येक श्वास किसी-न-किसी तत्त्व से संयुक्त है। जब हम विशेष समय पर उदित होने वाले तत्त्व के बारे में जानने योग्य हो जाते हैं, तो हम उन कार्यों को करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जिनमें वह तत्त्व सहयोगी होता है। नीचे कुछ विधियाँ दी जा रही हैं, जिनके द्वारा किसी समय में कार्य करने वाले तत्त्व को जाना जा सकता है।

रंगों द्वारा तत्त्वों की पहचान

सर्वप्रथम पद्मासन अथवा सिद्धासन में षण्मुखी मुद्रा सहित बैठ जायें। (कानों को दोनों हाथों के अँगूठों से बन्द करें। आँखों को दोनों तर्जनियों से, नासा-रन्ध्रों को मध्यमा उँगलियों से तथा मुख को अनामिका और कनिष्ठा उँगलियों से बन्द करें। यह षण्मुखी मुद्रा है।) अतिरिक्त विवरण हेतु मेरी पुस्तक 'हठ योग' अथवा 'कुण्डलिनी योग' का अध्ययन करें।

अब नासिकाग्र अथवा भ्रूमध्य में धारणा करें। वहाँ कुछ रंग दिखायी देंगे। अलग-अलग तत्त्वों के सूचक रंग निम्नांकित हैं :

पृथ्वी-पीला, जल-श्वेत, अग्नि-लाल, वायु-गहरा नीला अथवा नीला हरा या हरा, आकाश-काला या काले धब्बे ।

आकार से तत्त्वों की पहचान

एक साफ दर्पण हाथ में ले कर उसे नासा-रन्ध्रों से ६ इंच की दूरी पर रखें। अब दर्पण पर श्वास छोड़ें, श्वास की गरमी से भाप जम जायेगी। यह एक निश्चित आकार में होती है। यह आकार किसी विशेष तत्त्व को सूचित

करता है जो निम्नानुसार है : पृथ्वी-वर्गाकार अथवा आयताकार, जल-अर्ध चक्र, अग्नि-त्रिकोण, वायु-गोलाकार अथवा षट्कोण, आकाश-छोटे-छोटे बिन्दु ।

श्वास-प्रवाह की दिशा द्वारा तत्त्वों की पहचान

जब पृथ्वी तत्त्व प्रमुख होता है, तो श्वास का प्रवाह एक सीधी रेखा में होता है। जब जल तत्त्व प्रमुख होता है, तो श्वास थोड़ी नीचे की ओर होती है। यदि श्वास का प्रवाह ऊपर की ओर हो, तो यह अग्नि तत्त्व का सूचक है तथा यदि श्वास का प्रवाह न्यून कोण पर बिना किसी क्रम के हो, तो वायु तत्व प्रमुख है और यदि श्वास का प्रवाह नासिका के बिलकुल पास (जैसे कि नासा-रन्ध्रों के भीतर हो रहा हो) फैलते हुए हो रहा हो, तो समझिए कि आकाश तत्त्व प्रमुख है।

रंग-परीक्षण द्वारा तत्त्वों की पहचान

जैसा कि पहले बताया गया है कि पृथ्वी का रंग पीला है, जल का रंग श्वेत है, अग्नि का लाल है, , वायु का नीला अथवा हरा अथवा नीले और हरे रंग का फैलाव तथा आकाश का रंग काला है। निम्नांकित परीक्षण साधक के रंगों पर स्वामित्व को बतलाते हैं :

साधक किसी आसन पर बैठ जाये। उसकी पीठ पर पाँचों तत्त्वों के रंग वाले पत्थर रखें। आँखें बन्द करके उसे उस समय कार्य कर रहे तत्त्व के बारे में चिन्तन करने के लिए कहें। अब बिना देखे कोई भी पत्थर उठाने के लिए कहें। तत्पश्चात् उससे पूछें कि उठाये गये पत्थर का रंग उसके द्वारा सोचे गये तत्त्व से मेल खाता है या नहीं। यदि प्रत्येक बार सभी तत्त्वों के साथ उसका अनुमान सत्य निकलता है, तो इसका अर्थ है कि उसने सभी तत्त्वों के प्रवाह तथा प्रकृति के बारे में उनके रंगों के द्वारा पढ़ा और समझा है।

तत्त्वों का स्वाद

पृथ्वी मीठा है, जल कसैला, अग्नि खट्टा और वायु तथा आकाश कड़वा है। जब तत्त्वों पर धारणा तथा ध्यान किया जाता है, तब ये स्वाद जीभ की नोंक पर अनुभव होते हैं। जब तत्त्व पर ध्यान किया जाये, तब उपरोक्त स्वाद को संयुक्त किया जाना चाहिए।

श्वास-प्रवाह की लम्बाई

जब व्यक्ति श्वास बाहर छोड़ता है, तो यह वातावरण में विलीन होने के पूर्व कुछ दूरी तक सीधी जाती है। हथेली को सामने रख कर या ऊपर-नीचे हिला कर इसका सरलतापूर्वक अनुभव किया जा सकता है।

यदि श्वास की लम्बाई १२ इंच हो, तो यह पृथ्वी तत्त्व को इंगित करती है। जब श्वास की लम्बाई ४ इंच होती है, तो अग्नि तत्त्व प्रधान है। श्वास की लम्बाई १६ इंच होने पर जल तत्त्व होता है तथा श्वास की लम्बाई ८ इंच होने पर वायु तत्त्व होता है।

जब आकाश तत्त्व का उदय होता है, तब नासा-रन्ध्रों के बाहर श्वास के प्रवाह का अनुभव ही नहीं होता। यह नासा-रन्ध्रों के भीतर ही चक्र बनाती है तथा नासिका से बाहर निकलते ही वायु में विलीन हो जाती है।

ऊपर बतायी गयी विधियों से हम किसी समय में उदित होने वाले विशेष तत्त्व को जान सकते हैं। इस ज्ञान का हम किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं, वह विधि इसी पुस्तक में अन्यत्र वर्णित है।

तत्त्व तथा नक्षत्रों एवं ग्रहों आदि का सम्बन्ध

पाँचों तत्त्व विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों को व्यक्त करते हैं, ये निम्न हैं :

पृथ्वी सूर्य एवं गुरु को सूचित करता है; जल चन्द्रमा और शनि को व्यक्त करता है; अग्नि मंगल का सूचक है तथा बुध आकाश द्वारा व्यक्त किया जाता है। चन्द्र नाड़ी में अग्नि तत्त्व का होना शुक्र का सूचक है।

अन्य दृष्टिकोण के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि सूर्य तथा मंगल अग्नि से सम्बद्ध हैं; चन्द्रमा तथा शुक्र जल से सम्बद्ध हैं; बुध आकाश से और गुरु तथा शनि पृथ्वी से सम्बद्ध हैं। राहु और केतु वायु से सम्बद्ध हैं।

सत्ताईस नक्षत्र निम्नानुसार नियन्त्रित होते हैं :

पृथ्वी तत्त्व- रोहिणी, अनुषा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा तथा अभिजित (अट्ठाईसवाँ नक्षत्र)।

जल तत्त्व- आद्रा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा, उत्तरा भाद्रपद, रेवती एवं आश्लेषा।

अग्नि तत्त्व- भरणी, कृतिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाति तथा पूर्वा भाद्रपद ।

वायु तत्त्व- अश्विनी, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा तथा विशाखा ।

बारह राशियों में से मेष, सिंह तथा धनु राशि अग्नि तत्त्व से सम्बद्ध हैं; कन्या तथा मकर राशि पृथ्वी से सम्बद्ध हैं; मिथुन, तुला और कुम्भ वायु तत्त्व से तथा कर्क, वृश्चिक और मीन जल से सम्बद्ध हैं।

आकाश सभी नक्षत्रों और राशियों में व्याप्त है।

तत्त्व और मानव-शरीर

पृथ्वी : हड्डियों, मांसपेशियों, त्वचा, केश तथा नाड़ियों को नियन्त्रित करता है।

जल : वीर्य, स्त्रियों में वसा, मूत्र तथा लार को नियन्त्रित करता है।

अग्नि : भूख और प्यास, निद्रा और आलस्य तथा तन्द्रा और प्रकाश पर नियन्त्रण करता है।

वायु : गति, चलना, सूँघना, सिकुड़ना तथा फैलना आदि क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है।

आकाश : प्रेम तथा घृणा, लज्जा और भय तथा सांसारिक विचारों में कमी पर नियन्त्रण करता है।

तत्त्वों के लाभ

पृथ्वी तत्त्व उदित हो, उस समय यदि कार्यारम्भ किया जाये, तो वह सदा सफल होगा। अस्थायी कार्य जैसे खाना-पीना आदि (अर्थात् जो स्थायी प्रभाव नहीं प्रदान करते या जिनका प्रभाव एक निश्चित अवधि के लिए हो) जब जल तत्त्व कार्य कर रहा हो, किये जा सकते हैं।

जब अग्नि, वायु तथा आकाश तत्त्व कार्यरत हों, तो उस समय यदि कार्य का आरम्भ किया जाये, तो परिणाम अच्छे नहीं प्राप्त होते । अतः इस समय ईश्वर का ध्यान करना अधिक अच्छा होगा। ये तत्त्व आध्यात्मिक लाभ हेतु उत्तम हैं।

अग्नि तत्त्व से निष्ठुर अथवा कठोर कार्यों में वृद्धि होती है। अत: इस समय व्यक्ति को कोई भी कार्य हाथ में लेने से पूर्व बड़ी सावधानी रखनी चाहिए।

आकाश तत्त्व से व्यक्ति को योग में सफलता मिलती है। आकाश तत्त्व के समय प्राणों पर सहज ही नियन्त्रण करके कुम्भक किया जा सकता है, इसका मन भी इस समय सरलता से नियन्त्रित एवं एकाग्र हो जाता है। आकाश तत्त्व सभी सांसारिक कार्यों हेतु अनुपयोगी है; क्योंकि इस समय मन बहिर्मुखी न हो कर शान्त रहता है।

सांसारिक कार्यों के लिए पृथ्वी तथा जल तत्त्व शुभ, अग्नि मध्यम, तथा आकाश अशुभ फलदायक है।

भविष्य में होने वाली घटनाओं के पूर्वानुमान तथा किसी अप्रत्यक्ष विचार से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देने हेतु निम्नांकित विवरण सहायक सिद्ध होंगे :

पृथ्वी तत्त्व पश्चिम पर, जल तत्त्व पूर्व पर, वायु तत्त्व उत्तर पर तथा अग्नि तत्त्व दक्षिण पर शासन करता है। आकाश तत्त्व मध्य बिन्दुओं पर शासन करता है।

चन्द्र नाड़ी में पृथ्वी तथा जल का उदय अत्यन्त शुभ है; क्योंकि इससे सभी कार्यों में सफलता मिलती है, जब कि सूर्य नाड़ी के साथ अग्नि तत्त्व मंगलकारी है।

पृथ्वी तथा जल क्रमशः दिन और रात्रि में आय के सूचक हैं। अनि मृत्यु का सूचक है। वायु सामान्य कमी की ओर इंगित करता है तथा आकाश पूर्ण हानि की ओर संकेत करता है।

पृथ्वी स्वायित्व, जल आय, वायु गति और अस्थायित्व तथा अग्नि और आकाश हानि और मृत्यु को बतलाते हैं।

पृथ्वी जड़ तथा भयंकर जीव जिनके बहुत से पैर हों, से सम्बन्धित विचारों को व्यक्त करता है। जल तथा वायु जीवित प्राणियों तथा चौपायों से सम्बन्धित विचारों में वृद्धि करता है। आकाश के समय सामान्यतया कोई विचार नहीं होता अथवा इस समय स्वर्ग के देवों से सम्बन्धित विचार मन में उत्पन्न होते हैं।

इस अध्याय में वर्णित विषय पूर्ण ज्ञानी योगियों के लिए हैं। योग में दृढ़तापूर्वक स्थित हुए बिना किसी भी उद्देश्य जैसे रोगों के उपचार अथवा भविष्य में होने वाली घटनाओं सम्बन्धी निर्देश आदि के लिए तत्त्वों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

अध्याय ७

सामान्य अनुमान

वह योगी जो तत्त्वों एवं उनके कार्यों का पूर्ण ज्ञान रखता हो तथा स्वर योग में भी प्रवीण हो, उसका प्रथम कर्तव्य है कि वह देश की समृद्धि हेतु सामान्य लक्षणों से सम्बन्धित दिशा-निर्देश समय-समय पर लोगों को प्रदान करता रहे। इस कार्य हेतु निम्न कुछ तथ्य अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगे।

वार्षिक पूर्वानुमान

योगी मेष संक्रान्ति के समय पद्मासन में बैठे तथा तत्त्व और नाड़ी की प्रकृति का विश्लेषण करे :

पृथ्वी, जल तथा वायु तत्त्व चन्द्र नाड़ी में हो, तो यह सभी अनाजों की प्रचुरता का सूचक है।

अग्नि और आकाश सामान्यतया दुर्भिक्ष के सूचक हैं।

सुषुम्ना का प्रवाह भ्रम, भय तथा महामारी का द्योतक है।

सप्ताह के दिन, चन्द्र दिवस तथा मेष संक्रान्ति के समय के अनुसार यदि सही तत्त्व का उदय हो तथा सही नाड़ी चल रही हो, तो प्रत्येक क्षेत्र में सफलता सहज ही कही जा सकती है।

इसी प्रकार साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक तथा दैनिक पूर्वानुमान बताये जा सकते हैं।

भूमि हेतु सामान्य पूर्वानुमान के समय श्वास का प्रवाह चन्द्र नाड़ी में (बायाँ स्वर) होना चाहिए।

यदि प्रश्न के समय अग्नि तत्त्व का उदय हो, तो बाजार में बहुत अधिक उतार-चढ़ाव होंगे। यदि आकाश तत्त्व उदित हो, तो बाजार में वस्तुओं की कमी होगी। ऐसे समय में यह ठीक होगा कि बाजार की गतिविधियों को रोक कर एक माह अथवा पन्दरह दिनों पश्चात् प्रारम्भ करें।

प्रश्न के समय यदि श्वास अपना प्रवाह चन्द्र से सूर्य की ओर परिवर्तित करे, तो देश में भयानक रोग होंगे।

जब चन्द्र नाड़ी चल रही हो, तो पृथ्वी में प्रचुर मात्रा में खाद्यान्न पैदा होगा और समय पर अच्छी वर्षा होगी।

स्वयं के लिए दिशा-निर्देश

१. भोजन : चन्द्र नाड़ी में अच्छी तरह भोजन करें। सूर्य नाड़ी में परिमित भोजन करें तथा सुषुम्ना में बहुत थोड़ा भोजन लें।

यदि सुषुम्ना चल रही हो, तो उपवास रखना श्रेष्ठ होगा। इस समय लिये गये भोजन का पाचन नहीं होता तथा यह रोग उत्पन्न करता है।

जब पृथ्वी तत्त्व उदित हो मीठा खायें, जल तत्त्व में तरल पदार्थ, अग्नि के समय तले हुए पदार्थ, वायु में कन्द-मूल तथा अनाज और आकाश के समय नमकीन पदार्थ ग्रहण करें।

आहार के समय निम्न क्रम अपनाना चाहिए :

पृथ्वी चन्द्र नाड़ी में-चावल और दूध ।

पृथ्वी सूर्य नाड़ी में-वसा ।

अग्नि चन्द्र अथवा सूर्य नाड़ी में-आटा और दालें।

जल चन्द्र नाड़ी में-घी।

जल सूर्य नाड़ी में-तेल में पके पदार्थ।

पृथ्वी तथा जल चन्द्र नाड़ी में-खीर।

पृथ्वी तथा जल सूर्य नाड़ी में छाछ अथवा मट्ठा ।

जब पृथ्वी, जल तथा अग्नि चन्द्र नाड़ी में हों, तो सामान्यतया फल और दूध लें।

जब वायु तथा आकाश चन्द्र नाड़ी में कार्य करें, पकी हुई पत्तेदार सब्जियाँ लें।

भोजन में क्रम इस प्रकार रहेगा-घी, फिर मीठा, फिर खट्टी वस्तुएँ तथा अन्त में तीखी वस्तुएँ। आपको घी से बनी हुई वस्तुओं से भोजन प्रारम्भ करना चाहिए तथा अन्त में तीखी वस्तुएँ ग्रहण करनी चाहिए।

स्वर योग के साधक के लिए विशेष रूप से तथा सामान्य सभी के लिए चरु अथवा खीर सर्वश्रेष्ठ आहार है।

अत्यधिक गरम तथा अम्लीय पदार्थों से परहेज रखें।

गरम पदार्थों के साथ खट्टा अथवा ठण्ढा दूध लेने से मितली आती है।

चन्द्र नाड़ी के समय ठण्ढे और तरल पदार्थ लेने से गठिया होता है; क्योंकि यह यूरिक अम्ल में वृद्धि करते हैं।

चन्द्र नाड़ी में भोजन अत्यन्त धीरे-धीरे करना चाहिए, जिससे पाचन अच्छी तरह हो।

यदि भोजन ग्रहण करते समय और तत्काल बाद चन्द्र नाड़ी को चलाया जाये, तो सभी विष नष्ट हो जाते हैं।

२. स्नान : जब सूर्य नाड़ी कार्य कर रही हो, तो तालाब अथवा नदी में प्रवेश करें। इससे मितली रोग ठीक हो जाता है। जल से बाहर तब निकलें, जब श्वास पिंगला से इडा में परिवर्तित (बायाँ स्वर चलने लगे) हो जाये । यदि आप चन्द्र नाड़ी (बायाँ स्वर) के प्रवाह के समय जल में रहेंगे, तो यूरिक अम्ल में वृद्धि हो जायेगी।

तैल-स्नान के लिए : जब चन्द्र नाड़ी (बायाँ स्वर) चले, तब तेल लगायें और सूर्य नाड़ी (दायाँ स्वर) चले, तब स्नान करें। इससे कफ नहीं बनेगा।

स्नान के समय अत्यधिक गरम जल होने से पित्त की वृद्धि होती है। अत्यधिक शीतल जल होने से गठिया रोग हो जाता है। स्नान के समय विशेष रूप से तैल-स्नान हेतु गुनगुना जल अथवा जल मात्र उतना ही गरम हो जो दर्द दूर करने हेतु पर्याप्त हो।

नाड़ियों का प्रवाह

यदि चन्द्र नाड़ी कई दिनों तक अकेले ही प्रवाहित हो, सूर्य नाड़ी चले ही नहीं अथवा इसके विपरीत स्थिति हो, तो एक पक्ष अथवा एक माह में मृत्यु का पूर्वानुमान किया जाता है।

यदि किसी भी एक नाड़ी (सूर्य अथवा चन्द्र) में तीन दिन तक निरन्तर प्रवाह हो, तो यह एक वर्ष में मृत्यु का सूचक है।

यदि किसी विशेष नाड़ी में दो दिन निरन्तर श्वास का प्रवाह हो, तो यह दो वर्ष में मृत्यु का सूचक है।

यदि किसी विशेष नाड़ी में एक दिन निरन्तर श्वास का प्रवाह हो, तो एक वर्ष में मृत्यु सम्भावित है।

सूर्य नाड़ी में श्वास के प्रवाह को रोकने से व्यक्ति सौर-समय का अतिक्रमण कर लेता है।

वह जो स्वर योग में प्रवीण है तथा जिसका श्वास के प्रवाह तथा पंच तत्त्वों के उदय पर पूर्ण नियन्त्रण है, वह दिन के समय चन्द्र नाड़ी चला कर और रात्रि में सूर्य नाड़ी चला कर अमरत्व प्राप्त करता है।

उपरोक्त तथ्य इसलिए बताये गये हैं, जिससे कि व्यक्ति दीर्घायु प्राप्त करे और योगाभ्यास करे।

अध्याय ८

महत्त्वपूर्ण निर्देश

जैसा कि इस पुस्तक के प्रारम्भ में बतलाया गया है मानव-शरीर में ऊर्जा का संवहन करने वाली ७२,००० नाड़ियाँ हैं। इनमें से २४ नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इन २४ नाड़ियों में से १० नाड़ियाँ महत्त्वपूर्ण हैं तथा इनमें से भी ३ नाड़ियाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये हैं— (१) इडा या इंगला अथवा चन्द्र नाड़ी; (२) पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी; और (३) सुषुम्ना ।

इडा बायें भाग में है, पिंगला दायें भाग में और सुषुम्ना मेरुदण्ड के मध्य में है। प्राण इन नाड़ियों के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचता है। इडा बायें नासा-रन्ध्र से प्रवाहित होती है, पिंगला दायें नासा-रन्ध्र से प्रवाहित होती है और सुषुम्ना दोनों नासा-रन्ध्रों से प्रवाहित होती है। इडा चन्द्र नाड़ी है तथा पिंगला सूर्य नाड़ी है। जीव निरन्तर 'सोऽहं' का जप करता रहता है। श्वास को ध्यानपूर्वक देखिए । आप पायेंगे कि श्वास भीतर लेते समय 'सो' की ध्वनि होती है तथा श्वास छोड़ते समय 'हं' की ध्वनि होती है। इडा और पिंगला की गति को अत्यन्त सावधानीपूर्वक देखिए। प्राण और मन को शान्त रखिए। जो इडा और पिंगला को उचित क्रम में रखते हैं, उन्हें भूत और भविष्य का ज्ञान हो जाता है।

इडा में श्वास अमृत की भाँति होती है। यह जगत् का पोषण करने वाली है। दायें में सदा जगत् जन्म लेता है। सुषुम्ना मध्य में चलती है। इडा के प्रवाह के समय शान्ति के कार्य करें। पिंगला के प्रवाह के समय कठोर कार्य करें। सुषुम्ना के प्रवाह के समय वे कार्य करें, जिनसे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हो तथा योगासन और जिनसे मोक्ष की प्राप्ति हो।

इडा और पिंगला स्थूल संवेदनात्मक जंजीरें न हो कर वे सूक्ष्म नाड़ियाँ हैजो सूक्ष्म प्राण ले कर जाती हैं। भौतिक शरीर में वे दायीं और बायीं संवेदनात्मक जंजीरें हैं।

इडा दाहिने वृषण से आरम्भ होती है और पिंगला बायें वृषण से। ये दोनों मूलाधार चक्र में सुषुम्ना नाड़ी के साथ मिलती हैं और वहाँ एक ग्रन्थि का निर्माण करती हैं। मूलाधार चक्र में इन तीनों नाड़ियों के मिलने के स्थान को मुक्ता त्रिवेणी कहते हैं। गंगा, यमुना तथा सरस्वती क्रमशः पिंगला, इडा और सुषुम्ना के रूप में यहाँ मिलती हैं। इस मिलन-स्थल को ब्रह्म ग्रन्थि कहते हैं। ये अनाहत और आज्ञा चक्र में पुनः मिलती हैं।

इडा शीतल है और पिंगला उष्ण। पिंगला भोजन का पाचन करती है। इडा पीले रंग की, शक्ति रूपा है। यह संसार का पोषण करती है। पिंगला गहरे लाल रंग की, रुद्र रूपा है। इडा और पिंगला काल की द्योतक हैं, जब कि सुषुम्ना काल का भक्षण करती है। योगी को अपने मृत्यु-काल का पूर्व में ही ज्ञान हो जाता है; इसलिए वह उस समय अपने प्राणों को सुषुम्ना में ले जाता है और उन्हें ब्रह्मरन्ध्र में रोके रहता है तथा काल का सामना करता है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध योगी श्री चांगदेव ने अपने प्राणों को सुषुम्ना में ले जा कर मृत्यु के विरुद्ध कई बार युद्ध किया। वे पूना के पास आलन्दी के श्री ज्ञानदेव के समकालीन थे। श्री चांगदेव ने योगाभ्यास द्वारा भूत-सिद्धि तथा जँगली जानवरों पर नियन्त्रण प्राप्त किया था।

इडा और पिंगला में से प्रत्येक की समयावधि पाँच घटिका अथवा दो घण्टे की है। वे दिन की ६० घटिकाओं में क्रमवार चलती हैं। प्रत्येक घटिका में पंच तत्त्व भी प्रवाहित होते हैं। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दिन प्रारम्भ होते हैं। जब क्रम विपरीत होता है, तो प्रभाव भी विपरीत होता है। शुक्ल पक्ष में इडा शक्तिशाली होती है। कृष्ण पक्ष में पिंगला शक्तिशाली होती है। यदि सूर्योदय के समय इडा प्रवाहित हो और सारे दिन चले तथा सूर्यास्त के समय पिंगला चलना प्रारम्भ हो और सारी रात पिंगला ही चले, तो यह बहुत अच्छे परिणाम देती है।

श्वास को सूर्योदय से ले कर सूर्यास्त तक सम्पूर्ण दिवस इडा से, बायें नासा-रन्ध्र से प्रवाहित होने दीजिए तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक सारी रात पिंगला, दाहिने नासा-रन्ध्र से श्वास को प्रवाहित होने दें। यही स्वर-साधना का अभ्यास है। वह जो इसका अभ्यास करता है, वह महान् योगी है। इसका अभ्यास कीजिए। अब जागिए, अमरता के अमृत का पान कीजिए। अपने भीतर तमोगुण के सभी रूपों-जड़ता, आलस्य तथा अज्ञान को त्याग दें। अपनी बेकार की गपशप, व्यर्थ बातों तथा अन्यों की आलोचना करने की आदत को त्याग दें। कुछ तो व्यावहारिक कार्य करें।

गलत स्वर का चलना रोगों का कारण है। ऊपर बताये अनुसार स्वर को सही रखने से स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। इससे आपको निस्सन्देह अद्‌भुत लाभ प्राप्त होगा।

एक दिन और रात में श्वास २१,००० बार भीतर आती और बाहर जाती है। जब श्वास दाहिने नासा- रन्ध्र से भीतर आती है और बाहर जाती है, तो सूर्य अथवा पिंगला नाड़ी (दाहिना स्वर) काम करती है। जब श्वास बायें नासा-रन्ध्र से भीतर आती और बाहर जाती है, तो इडा अथवा चन्द्र नाड़ी (बायाँ स्वर) काम करती है।

पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला, जल तत्त्व का रंग श्वेत, अग्नि तत्त्व का रंग लाल, वायु तत्त्व का रंग हरा तथा आकाश तत्त्व का रंग काला है।

प्रातः जागते ही दायीं हथेली देखना शुभ है। इस समय जो नाड़ी चल रही हो, उसके अनुरूप हथेली से मुख (चेहरे) को स्पर्श करना बहुत अधिक लाभदायक है। अर्थात् यदि सूर्य नाड़ी (दायाँ स्वर) चल रही हो, तो दाहिनी हथेली से मुख को स्पर्श करें।

यदि प्रातःकाल पिंगला (दायाँ स्वर) चल रही हो, तो बिस्तर से नीचे उतरते समय दाहिना पैर भूमि पर सर्वप्रथम रखें और पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर तीन पग चलें तथा यदि इडा (बायाँ स्वर) नाड़ी चल रही हो, तो बायाँ पैर सर्वप्रथम भूमि पर रखें और पश्चिम तथा दक्षिण दिशा की ओर तीन पग चलें। प्रातः जागते ही यदि बायाँ स्वर चलता है, तो यह अत्यन्त शुभ है। चन्द्र नाड़ी के अनुरूप भूमि पर पैर रखना बहुत लाभदायक है।

यदि पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी चल रही है और यदि कोई प्रश्न पूछे, तो यदि वह नीचे, पीछे अथवा दायीं ओर खड़े रह कर प्रश्न कर रहा है, तो वह अवश्य ही सफल होगा। यदि चन्द्र नाड़ी चल रही है और प्रश्नकर्ता ऊपर सामने अथवा बार्थी ओर खड़ा है, तो उसे सफलता मिलेगी।

सूर्य नाड़ी के तीन दिन हैं-रविवार, मंगलवार तथा शनिवार । चन्द्र नाड़ी के चार दिन हैं—सोमवार, बुधवार, गुरुवार तथा शुक्रवार। नाड़ी के अनुरूप दिनों में यदि प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे परिणामदायक होते हैं। यदि सुषुम्ना के समय प्रश्न किया जाता है, तो वह निष्फल होता है।

श्वास छोड़ते समय वायु की लम्बाई सामान्यतया १२ अंगुल होती है। भोजन के समय यह २० अंगुल, चलते समय २४ अंगुल, शयन के समय ३० अंगुल, मैथुन के समय ३६ अंगुल और व्यायाम के समय श्वास की लम्बाई और भी अधिक होती है।

एक स्वस्थ मनुष्य में प्रति ढाई घटिका अथवा १ घण्टे पश्चात् नाड़ियों में परिवर्तन होता है। जब सुषुम्ना चले, तो ईश्वर का ध्यान करें।

प्रत्येक माह शुक्ल पक्ष के प्रथम तीन दिन; सातवें, आठवें और नौवें दिन; तेरहवें, चौदहवें तथा पूर्णिमा को चन्द्र नाड़ी चलना लाभदायक है तथा शुक्ल पक्ष के चौथे, पाँचवें, छठे, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें दिन सूर्य नाड़ी का चलना लाभदायक है।

प्रत्येक माह के कृष्ण पक्ष में प्रथम तीन दिन, सातवें, आठवें, नौवें दिन तथा तेरहवें, चौदहवें और अमावस के दिन सूर्य नाड़ी लाभकारी है तथा शेष दिनों में इडा अथवा चन्द्र नाड़ी लाभकारी है।

जब इडा नाड़ी चले, तो पुण्य-कार्य कीजिए। भोजन तथा धारण सूर्य नाड़ी के अनुरूप होना चाहिए। इडा नाड़ी सभी अंगों में अमृत की वर्षा करती है।

जब चन्द्र नाड़ी चल रही हो, तो लम्बी तीर्थयात्रा प्रारम्भ करें, धार्मिक कर्मकाण्ड करें, कुएँ-तालाब खुदवायें, मन्दिरों का उद्घाटन करें, मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा करें, औषधियाँ लें, विवाह करें, नवीन गृह में प्रवेश करें, कृषि-कार्य आरम्भ करें, मालिक अथवा मित्र से मिलें, गुरु की पूजा करें तथा अध्ययन करें।

जब सूर्य नाड़ी चल रही हो, तो व्यायाम करें। जब आप किसी घर अथवा शहर में प्रवेश करें अथवा प्रस्थान करें, तो नाड़ी के अनुरूप पैर रखें।

षण्मुखी अथवा योनि मुद्रा का अभ्यास करें-दोनों कानों को अँगूठों से बन्द करें, दोनों तर्जनियों से आँखों के कोने बन्द करें, मध्यमा उँगलियों से नासिका-रन्ध्रों को बन्द करें तथा अनामिका और कनिष्ठा उंगलियों से मुख को बन्द करें। हलका कुम्भक करें और भ्रूमध्य में अपना ध्यान केन्द्रित करें।

इस समय यदि पीले रंग का गोला दिखायी दे, तो पृथ्वी तत्त्व है; यदि लाल रंग दिखायी दे, तो अग्नि तत्त्व है; यदि काले रंग का गोला दिखायी दे, तो आकाश तत्त्व है; यदि हरा या नीला रंग दिखायी दे, तो वायु तत्त्व है तथा यदि श्वेत रंग दिखायी दे, तो जल तत्त्व है।

सूर्य नाड़ी के अंक विषम अथवा ३, ५, ७, ९ हैं तथा चन्द्र नाड़ी के लिए सम अंक २, ४, ६, ८ आदि हैं। यदि सूर्य नाड़ी के समय कोई प्रश्न पूछा जाये और यदि प्रश्न के अक्षर विषम हैं, तो प्रश्न सफल होगा।

जब आप स्वरोदय साधना प्रारम्भ करें, तो उसके पहले शिवजी को प्रणाम करें जो इस अद्‌भुत विज्ञान के दाता हैं और 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का जप करें तथा सभी विघ्नों को दूर करने वाले श्री गणेश जी को प्रणाम करें।

अध्याय ९

व्यावहारिक पथ-प्रदर्शन

अभ्यास हेतु उपयुक्त आसन

श्वास के निरीक्षण हेतु साधक को मृग-चर्म अथवा व्याघ्र-चर्म अथवा कुशासन अथवा श्वेत वस्त्र अथवा सुन्दर नरम गलीचे पर बैठना चाहिए। उपरोक्त में से किसी एक आसन पर पद्मासन में बैठें, सभी बुरे विचारों को दूर हटा दें। उड्डियान बन्ध लगायें और अपना ध्यान इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ी पर केन्द्रित करें। एक दिन में

श्वास नासा-रन्ध्रों से २१,६०० बार जाती है। यह निम्न चक्रों से हो कर जाती है-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र ।

तीन महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ

बायें नासा-रन्ध्र से जाने वाली श्वास को इडा नाड़ी कहते हैं तथा दायें नासा-रन्ध्र से जाने वाली श्वास पिंगला नाड़ी कहलाती है। इन्हें क्रमशः चन्द्र और सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। जब श्वास दोनों नासा-रन्ध्रों में नहीं रहती है, वह सुषुम्ना नाड़ी में रहती है। इसे अग्नि नाड़ी भी कहते हैं। जब श्वास दोनों नासा-रन्ध्रों में एक-समान प्रवाहित होती है, तो उसे पूर्ण कहते हैं।

चन्द्र नाड़ी को स्त्रीलिंग माना जाता है तथा यह काले रंग और राशि-चक्र के स्थिर चिह्नों से संयुक्त है। सूर्य नाड़ी को पुल्लिंग माना जाता है। यह श्वेत रंग तथा राशि-चक्र के चलित चिह्नों से संयुक्त है। अग्नि नाड़ी (सुषुम्ना) को नपुंसक माना जाता है। यह राशि चक्र के सामान्य चिह्नों से संयुक्त है।

यदि किसी को यात्रा पर जाना हो, तो उसे यात्रा प्रारम्भ उस समय करनी चाहिए, जब इडा नाड़ी (बायाँ स्वर) चल रही हो तथा गन्तव्य स्थान पर पहुँचते समय सूर्य नाड़ी (दायाँ स्वर) चलनी चाहिए।

चन्द्र नाड़ी (बायें स्वर) में निम्न कार्य शुभ हैं:

सन्देहवाहक भेजना, स्वयं प्रतिनिधि अथवा राजदूत बनना, नवीन वस्त्र तथा आभूषण धारण करना, विवाह-संस्कार करना, दास अथवा आश्रितों को रखना, कुआँ अथवा तालाब खोदना, निवास-स्थान हेतु भूमि क्रय करना, नवीन गृह में प्रवेश करना, वस्तुओं का विक्रय करना, राजा से प्रथम बार भेंट करना, पवित्र कर्मकाण्ड करना, इष्टदेव अथवा मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करना, ज्वर का उपचार करना, पुराने शत्रु से सन्धि करना, लाभ के निमित्त धन अर्जन करना, उपहार तैयार करना, बुरी आदतों को त्यागना।

सूर्य नाड़ी अथवा दायें स्वर में निम्न कार्य करना शुभ है :

गुरु से उपदेश ग्रहण करना, अन्य को शिक्षा देना, शास्त्रों का अध्ययन करना, शास्त्रों की शिक्षा देना, अन्य का आतिथ्य करना, शत्रु की सेना को खदेड़ना, बीज बोना, व्यापार करना, चोरी करना, द्यूतक्रीड़ा करना, शास्त्रार्थ करना, हाथी-घोड़े अथवा रथ की सवारी करना, लेख लिखना, संगीत का कार्यक्रम देना, भाषण देना, घृणा उत्पन्न करना, किसी का अंग-भंग करना, न्यायाधीशों को आमन्त्रित करना, असुरों को खदेड़ना, मन्त्र-सिद्धि प्राप्त करना, चिकित्सा प्रारम्भ करना, रात्रि-भोजन करना, शयन करना, स्नान करना तथा यौगिक शक्ति द्वारा शत्रु की गतिविधियाँ रोकना।

जब सुषुम्ना चले, तो समाधि हेतु साधना करना श्रेष्ठ है। इस समय कोई भी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती। यदि इस समय कोई अपनी गुमी हुई वस्तु के बारे में प्रश्न करे, तो उत्तर नकारात्मक होगा। इस समय कोई कल्याणप्रद कार्य नहीं होंगे; बल्कि इसके विपरीत बुरे कार्य सफल होंगे।

जिस नासा-रन्ध्र से श्वास चलती है, उसे पूर्ण कहते हैं। जब कोई तार्किक योगी के पूर्ण ओर खड़ा रहता है, तो योगी यह पूर्वानुमान कर लेता है कि वह विजयी होगा। किन्तु वही व्यक्ति यदि योगी के शून्य ओर खड़ा हो, तो वह पराजय को प्राप्त होगा।

चन्द्र नाड़ी का प्रभाव पश्चिमी और दक्षिणी प्रदेशों पर होता है तथा सूर्य नाड़ी का प्रभाव पूर्वी ओर उत्तरी प्रदेशों पर होता है। जब व्यक्ति की श्वास बायें नासा-रन्ध्र से प्रवाहित हो रही हो, तो उसे पश्चिम और दक्षिण की ओर यात्रा करना श्रेष्ठ होगा तथा यदि उसकी श्वास दाहिने नासा-रन्ध्र से प्रवाहित हो रही हो, तो उसे पूर्व अथवा उत्तर में जाना श्रेष्ठ होगा।

अच्छे तथा बुरे की भविष्यवाणी हेतु नियम

यदि प्रश्नकर्ता योगी के पूर्ण ओर खड़ा है, तो वह जो चाहेगा, वह उसे प्राप्त होगा। इसके साथ ही प्रश्नकर्ता के प्रश्न के प्रथम शब्दों के अक्षरों की गिनती भी करें। यदि इनकी संख्या विषम है, तो वह सूर्य नाड़ी के प्रभाव को प्राप्त करेगा तथा यदि इनकी संख्या सम है, तो वह चन्द्र नाड़ी के प्रभाव को प्राप्त करेगा। यदि प्रश्नकर्ता पूर्ण की ओर खड़ा हो कर अपनी हानि अथवा विष-दंश के बारे में अथवा मृत्यु से सम्बन्धित प्रश्न कर रहा है, तो ये सभी दोष निष्प्रभावी हो जायेंगे। जो-कुछ उसका खोया है, वह सब मिल जायेगा। लेकिन वह इसके विपरीत खड़ा है, तो उसका प्रभाव विपरीत होगा। यदि प्रश्नकर्ता यह जानने के लिए आया है कि उसका होने वाला शिशु बालक होगा अथवा बालिका, तो यदि वह किसी जीवित प्राणी पर सवार हो कर अथवा जीवित प्राणी को पकड़े हुए अथवा स्पर्श किये हो तथा यदि वह योगी के दाहिनी ओर खड़ा हो और योगी का दाहिना स्वर चल रहा हो, तो उसका उत्तर होगा बालक। लेकिन यदि वह योगी के बायीं ओर खड़ा हो और स्वर भी बायाँ ही चल रहा हो, तो होने वाला शिशु बालिका होगी। लेकिन यदि योगी की सुषुम्ना नाड़ी चल रही है, तो होने वाला शिशु नपुंसक होगा। यदि प्रश्नकर्ता पहले गलत तरफ खड़ा हो, फिर सही ओर खड़ा हो, तो होने वाला शिशु अपनी माँ के लिए बड़ी कठिनाइयों के बाद जन्म लेगा।

श्वास के साथ पंच तत्त्वों का संयोग

यदि नासा-रन्ध्रों से बाहर आ रही श्वास नासिका की ऊपरी हड्डी से आ रही हो, तो यह पृथ्वी तत्त्व के साथ संयुक्त है। यदि यह सीधे नीचे जाये, तो यह जल तत्त्व के साथ संयुक्त है। यदि यह ऊपर उठती है, तो यह अग्नि तत्त्व की द्योतक है। यदि यह अपने मार्ग से हट जाये, तो यह वायु तत्त्व के साथ संयुक्त है। यदि यह चारों दिशाओं में फैले, तो यह आकाश तत्त्व के साथ संयुक्त है।

पृथ्वी से प्रभावित श्वास स्वर्णिम वर्ण की होती है। जल से प्रभावित श्वास श्वेत वर्ण की, अग्नि तत्त्व की श्वास रक्त वर्ण की तथा वायु तत्त्व से प्रभावित श्वास श्याम वर्ण की होती है। पृथ्वी तत्त्व से युक्त श्वास मीठा स्वाद देगी, जल तत्त्व से युक्त श्वास तीखा, अग्नि तत्त्व से युक्त श्वास नमकीन तथा वायु तत्त्व से युक्त श्वास खट्टा स्वाद देगी। पृथ्वी तत्त्व के समय श्वास का आकार अष्टकोणीय, जल तत्त्व युक्त श्वास का आकार अष्टमी के चन्द्रमा की भाँति, अग्नि तत्त्व के साथ श्वास का आकार त्रिकोणाकार तथा वायु युक्त श्वास षटकोणीय आकार की होती है। पृथ्वी तत्त्व से श्वास १२ इंच लम्बी जाती है, जल तत्त्व से १६ इंच की, अग्नि से ८ इंच की तथा वायु से ४ इंच की लम्बी श्वास निकलती है।

जब आकाश तत्त्व प्रधान होता है, तो श्वास पारदर्शक अथवा रंगहीन, गले में कड़वा स्वाद आता है, श्वास का आकार गोल तथा लम्बाई १ इंच होती है।

ऊपर दिये गये विवरण तथा नीचे दिये विवरण में से कुछ उन उच्च योगियों हेतु निर्दिष्ट हैं जो सूक्ष्म रूपों तथा संवेदनाओं को ग्रहण कर सकते हैं। अन्य इन्हें समझ नहीं सकते।

यदि कोई युद्ध हेतु समर-प्रांगण में जा रहा हो और वह योगी के चल रहे स्वर की तरफ खड़े हो कर प्रश्न करे, तो उत्तर यह होगा कि जब वह वापस आयेगा, तो उसके शरीर पर घाव होंगे। यदि उस समय पृथ्वी तत्त्व का प्रभाव हो, तो घाव उसकी पीठ पर होंगे; यदि जल तत्त्व का प्रभाव हो, तो घाव उसके पैर पर; यदि अग्नि तत्त्व का प्रभाव हो, तो सीने पर घाव होंगे; यदि वायु तत्त्व प्रधान होगा, तो बाँह पर घाव होंगे तथा यदि आकाश तत्त्व प्रधान होगा, तो घाव सिर पर होगा। यदि महाविष्णु भी स्वयं उस योद्धा की रक्षा हेतु आ जायें, तो भी वह नहीं बच सकता।

वायु की दिशा से अग्नि की दिशा को जोड़ने वाली एक रेखा खींचने पर तथा पश्चिम और दक्षिण को चन्द्रमा का क्षेत्र मान कर तथा उत्तर एवं पूर्व को सूर्य का क्षेत्र मान कर यदि योद्धा सूर्य नाड़ी चलते समय स्वयं को सूर्य क्षेत्र में रखे और अपने शत्रु को चन्द्रमा के क्षेत्र में रख कर युद्ध करे, तो वह निस्सन्देह विजयी होगा। यदि पृथ्वी तत्त्व प्रधान हो, तो उसका शस्त्र चाकू होना चाहिए; यदि जल तत्त्व प्रधान हो, तो उसका शस्त्र तलवार होना चाहिए; यदि अग्नि हो, तो शस्त्र धनुष होना चाहिए; यदि वायु तत्त्व प्रधान हो, तो छड़ी तथा यदि आकाश तत्त्व प्रधान हो, तो उसका शस्त्र पत्थर होना चाहिए।

रोगों के लिए

यदि रोगी पुरुष है तथा यदि सन्देश किसी पुरुष द्वारा भेजा गया है और प्रश्न स्वर योगी के दाहिनी ओर से किया गया है, तो रोग सरलता से ठीक हो जायेगा। यदि पुरुष रोगी ने किसी स्त्री सन्देशवाहक को भेजा है और प्रश्न योगी के बार्थी ओर से किया गया है, तो रोग पुनः प्रकट होगा। यही नियम स्त्री रोगी के लिए है। रोग कब ठीक होगा, वह उस क्षण जो तत्त्व प्रधान है, उस पर निर्भर करता है। यदि पृथ्वी तत्त्व प्रधान है, तो रोग देरी से अच्छा होगा; यदि जल तत्त्व प्रधान है, तो रोग शीघ्र अच्छा होगा; यदि अग्नि तत्त्व प्रधान है, तो तीन दिन में ठीक होगा तथा यदि आकाश तत्त्व प्रधान है, तो उसी दिन रोग ठीक हो जायेगा।

यदि प्रश्न के समय सुषुम्ना नाड़ी चल रही है, तो रोगी ५ दिनों में मृत्यु को प्राप्त होगा।

मात्र गुरु की कृपा से किसी को यह ज्ञान हो सकता है कि पृथ्वी प्रभावित श्वास में जल या अग्नि या वायु अथवा आकाश की प्रधानता पहचानी जा सकती है। पृथ्वी तथा जल का प्रभाव अच्छा है।

नाड़ी को कैसे चलना चाहिए

नाड़ी का परीक्षण सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व करना चाहिए। इसके बाद शुक्ल पक्ष की प्रथमा, द्वितीया और तृतीया को चन्द्र नाड़ी चलनी चाहिए। इसे बिना परिवर्तित हुए दो घण्टे तक निरन्तर चलना चाहिए। रविवार, मंगलवार, गुरुवार तथा शनिवार को सूर्य नाड़ी चलनी चाहिए तथा शेष दिनों चन्द्र नाड़ी चलनी चाहिए। जब पूर्वा, उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुषा, ज्येष्ठा, मूल, रोहिणी, शतभिषा अथवा उत्तरा भद्रा नक्षत्र हो, तो सूर्य नाड़ी चलनी चाहिए तथा अन्य पन्दरह नक्षत्रों में चन्द्र नाड़ी चलनी चाहिए। यदि श्वास विपरीत नासा-रन्ध्र में प्रवाहित होती है, तो बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं; लेकिन जो भगवान् शिव की स्तुति करते हैं और उनमें पूर्ण आस्था रखते हैं, उनके सामने कोई कठिनाई नहीं आती।

यदि शुक्ल पक्ष में गुरुवार को चन्द्र नाड़ी चले तथा कृष्ण पक्ष में गुरुवार को सूर्य नाड़ी चले, तो अच्छे परिणाम होंगे। यदि किसी के साथ सदा ऐसा होता है, तो वह जीवन्मुक्त होगा। किसी शनिवार को रात्रि में तथा दिन में यदि सूर्य नाड़ी से चन्द्र नाड़ी में परिवर्तन न हो अथवा इसके विपरीत हो, तो वह बहुत प्रसिद्ध हो जाता है।

यदि प्रश्नकर्ता किसी के बारे में प्रश्न करे कि वह इस समय कहाँ है। और यदि इस समय पृथ्वी तत्त्व का प्रभाव है, तो वह इस समय घर पर होगा, यदि जल तत्त्व का प्रभाव है, तो वह बरामदे में है; यदि अग्नि तत्त्व प्रमुख है, तो वह गाँव की सीमा में है; यदि वायु तत्त्व प्रमुख है, तो वह पहाड़ी के ऊपर है तथा यदि आकाश तत्त्व प्रमुख है, तो वह सोया हुआ है। यदि प्रश्न दूर गये व्यक्ति के बारे में है, तो उत्तर होना चाहिए: (१) पृथ्वी-वह गाँव में ही है, (२) जल-वह वापस आ रहा है, (३) अग्नि-वह निरन्तर चल रहा है, (४) वायु-वह अपने गृह-स्थान को वापस आ रहा है, तथा (५) आकाश-२४ मिनट में वह अपने घर में होगा।

यदि किसी की श्वास शरीर में अवशोषित हो जाये और नासिका में आये-जाये नहीं, तो उसकी मृत्यु नहीं होती। इस समय मन आदि कार्य नहीं करते तथा गतिहीन हो जाते हैं और इस समय यम से भय समाप्त हो जाता है। पृथ्वी तत्त्व का प्रभाव डेढ़ नालिका (३६ मिनट), जल का प्रभाव सवा नालिका (३० मिनट), अग्नि का प्रभाव १ नालिका (२४ मिनट), वायु का प्रभाव आधी नालिका (१२ मिनट) और आकाश का ३/४ नालिका (१८ मिनट) होता है। एक नासा-रन्ध्र में श्वास की पूर्ण अवधि ५ नालिका अथवा २ घण्टे है। यदि इस समय आकाश तत्त्व में कमी अथवा वृद्धि हो, तो यह हानिकारक है।

मास के अन्तिम दिन योगी को मात्र एक समय भोजन लेना चाहिए जिससे शरीर और मन की शुद्धता होती है। 'Tai (Makara)' की प्रथमा को उसे सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व श्वास का परीक्षण करना चाहिए तथा पूरे दो घण्टे तक बायाँ स्वर चलने देना चाहिए। इसके पश्चात् उसे एकान्तर से प्रति दो घण्टे के अन्तराल से प्रत्येक नासिका में श्वास का प्रवाह परिवर्तित करते रहना चाहिए और 'Adi (Karkataka)' माह की प्रथमा को सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व उसे दायाँ स्वर चलना चाहिए तथा 'Makara' की प्रथमा तक यह भी बाद में देखते रहना चाहिए कि यह क्रमश: दायें से बायें नासा-रन्ध्र में प्रत्येक में दो-दो घण्टे चलता रहे। यदि वह ऐसा करता रहे, तो वह एक सौ वर्ष तक जियेगा।

जो व्यक्ति उपरोक्त नियम का पालन करता है, उसे जब बायाँ स्वर चल रहा हो, तब भोजन लेना चाहिए तथा गरम, नमकीन, कड़वा तथा तीखा भोजन लेते समय जल नहीं पीना चाहिए। उसे घी, दूध, खट्टी, मीठी वस्तुएँ जब सूर्य नाड़ी चले, उस समय लेनी चाहिए और इस समय वह जल भी पी सकता है। यदि इस प्रकार भोजन किया जाये, तो ही वह लाभदायक होता है, अन्यथा नहीं।

जो स्वर योग की साधना करता है, उसके साथ कभी कुछ गलत नहीं हो सकता।

स्वर योग में प्रवीण योगी के बारे में ज्ञानी जन अनेक आश्चर्यजनक बातें बतलाते हैं। यदि ऐसा योगी उस समय सूर्य के सामने खड़ा हो, जब उसकी छाया न तो ५ फीट से छोटी हो और न ही १० फीट से अधिक लम्बी, तथा वह शरीर को हिलाये बिना छाया के गले, हाथों अथवा पैरों पर त्राटक करे तथा तत्क्षण आँखें बन्द किये बिना स्वच्छ आकाश में अपनी छाया देखे-यदि यह छाया स्वर्णिम रंग की है, तो उसे सोना प्राप्त होगा। यदि छाया श्वेत रंग की है, तो उसे मृत्यु से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, उसके जीवन-काल में वृद्धि हो जायेगी। यदि वह लाल छाया देखे, तो उसका जीवन-काल कम हो जायेगा। यदि वह काली छाया देखे, तो क्षय प्रारम्भ होगा। यदि वह सिर नहीं देख पाता है, तो वह तीन माह में मृत्यु को प्राप्त होगा। जो इस प्रकार बारह वर्षों तक अपनी छाया को देखने का अभ्यास करे, तो स्वयं उसकी छाया उससे बात करने लगती है और फिर उसे अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कुछ वर्षों बाद यह छाया एक पुरुष का आकार - ले लेती है और वह जहाँ भी जाता है, उसके साथ जाती है; जहाँ वह लेटता है, उसके साथ लेटती है; जब वह जागेगा, वह जागेगी और भविष्य में जो भी उसके साथ भला या बुरा होने वाला होगा, वह पहले ही बता देगी। जो व्यक्ति सूर्य के प्रकाश में जल को थूकता है और उसमें इन्द्रधनुष के रंगों को देखता है, वह एक वर्ष तक मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। यदि ताँबे के बर्तन में जिसमें घी भरा

है, उसमें जो पूर्ण चन्द्र अथवा सूर्य का प्रतिबिम्ब देख सकता है, तो उसके परिणाम निम्नानुसार होंगे -यदि श्वेत छाया दिखायी देती है, तो अच्छा है; यदि यह पीली दिखायी दे, तो यह बुरा है; यदि हरे रंग की छाया दिखायी दे, तो इसका परिणाम रोग होगा। यदि प्रतिबिम्ब काला दिखायी दे, तो मृत्यु निश्चित है। यदि छाया का दक्षिणी भाग बायें भाग से छोटा हो, तो मृत्यु निश्चित ही छह माह में आयेगी तथा यदि पूर्वी भाग छोटा दिखायी दे, तो मृत्यु एक माह में आयेगी और यदि मध्य में एक छेद दिखायी दे, तो मृत्यु दस दिन में आयेगी।

यदि हाथ, पैर, माथा अथवा ठुड्डी में फड़कन हो, तो यह इस बात का संकेत है कि मृत्यु-काल सन्निकट है। यदि सिर में फड़कन है, तो मृत्यु एक वर्ष में होगी; यदि पैर में फड़कन हो, तो मृत्यु छह माह में होगी। यदि माथे में फड़कन है, तो मृत्यु तीन माह में होगी। यदि ठुड्डी में फड़कन है, तो मृत्यु दस दिन में होगी। यदि कानों की सुनने की शक्ति कम हो गयी हो, तो सात दिन में मृत्यु होगी। यदि नेत्रों की ज्योति कम हो गयी हो, तो मृत्यु पाँच दिन में होगी; यदि घ्राण शक्ति चली गयी हो, तो मृत्यु तीन दिन में तथा यदि वाक् शक्ति चली गयी हो, तो मृत्यु दो दिन में होगी।

भीतर आने वाली तथा बाहर जाने वाली श्वास

बाहर जाने वाली श्वास शिव है और भीतर आने वाली श्वास शक्ति है। उच्छ्वसन विष ग्रहण करने के समतुल्य तथा अन्तः श्वसन अमृत-पान के समान है। जब मनुष्य श्वास भीतर लेता है, तब उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। कुम्भक के समय भीतर लिया गया विष अपना मारक गुण खो देता है। यदि प्रश्नकर्ता के प्रथम शब्द के अक्षर विषम संख्या में हैं, तो वह शिव का रूप है और यदि सम हैं, तो वह शक्ति का रूप है। यदि गुम गये व्यक्ति की वापसी के बारे में प्रश्न है और यह अन्तःश्वसन के समय किया गया है, तो उत्तर नकारात्मक होगा। यदि रोग ठीक होने के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया है, तो उसका उत्तर इस प्रकार होगा-अन्तःश्वसन के समय सकारात्मक और (हाँ) उच्छ्वसन के लिए नकारात्मक (नहीं)।

स्वरों द्वारा परिणाम के संकेत

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वरों को चार भागों में बाँटा गया है। जैसे अ, आ बालक वर्ग में; इ तथा ई युवा वर्ग में; उ, ऊ सम्राट् वर्ग में तथा शेष वृद्ध वर्ग में। यदि योद्धा के नाम का प्रथम शब्द है अ अथवा आ है, तो इसे ला शब्द से जोड़ देंगे (आला बनाने के लिए); यदि यह इ तथा ई है, तो उसे लिली बनाने के लिए ली से संयुक्त करना चाहिए; यदि यह उ, ऊ है, तो इसे उलु बनाने के लिए लु से संयुक्त करना चाहिए, और फिर योद्धा को बालक या युवा या राजा की भाँति माना जाना चाहिए। ऐसा कहा जायेगा कि युवा बालक को पराजित करेगा तथा राजा युवक को पराजित करेगा। वृद्ध व्यक्ति अन्यों द्वारा पराजित किया जायेगा।

जब पृथ्वी का प्रभाव चन्द्र नाड़ी में हो, तो मन्दिर में प्रवेश करना, दीवार अथवा घर बनवाना या नवीन गृह अधिग्रहित करना, पवित्र कर्मकाण्ड करना अथवा वृक्षारोपण करना शुभ है। यदि जल का प्रभाव है तो तालाब खुदवाना, नहर स्थापित करना, खेत जोतना, बीज बोना, विवाह करना शुभ है। यदि अग्नि तत्त्व प्रधान है, तो रोगियों का उपचार प्रारम्भ किया जा सकता है। यदि वायु तत्त्व प्रधान है, तो व्यक्ति घुड़सवारी कर सकता है, कार चला सकता है अथवा समुद्री यात्रा कर सकता है। यदि आकाश तत्त्व प्रधान है, तो जप प्रारम्भ करना और तीरन्दाजी करना लाभदायक है।

यही नियम सूर्य नाड़ी के साथ भी लागू होते हैं। जो इस स्वर विज्ञान में दक्ष होते हैं, उन्हें ब्राह्मण की भाँति आदर दिया जाना चाहिए, देवों की भाँति उनका सम्मान किया जाना चाहिए। वे सायुज्य मुक्ति के अधिकारी हैं। जो इस स्वर योग की शिक्षा श्रेष्ठ गुरु से प्राप्त करता है, वह स्वयं ही शिव बन जाता है।

अध्याय १०

मन का क्रमशः ऊर्ध्वारोहण

हमारे शरीर में स्थित चक्र शक्ति के केन्द्र हैं। ये प्राण शक्ति के केन्द्र हैं जो जीवित शरीर में प्राण वायु द्वारा प्रकट होते हैं। इनके अधिष्ठाता देवों के नाम उस विश्व-चेतना पर आधारित हैं जो इन केन्द्रों के रूप में प्रकट होती है। ये चक्र स्थूल इन्द्रियों को नहीं दिखायी देते । ये मात्र जीवित शरीर में ही दिखायी देते हैं और शरीर के मृत हो जाने पर उसके विखण्डन के साथ ही अदृश्य हो जाते हैं।

मन की शुद्धता से योग में पूर्णता प्राप्त होती है। जब आप अन्यों के साथ व्यवहार करें, अपना व्यवहार सही करें। सहनशील बनें। पापियों से घृणा न करें। सभी पर दया करें। यदि आप अपनी अधिकतम ऊर्जा योगाभ्यास में लगायेंगे, तो आपकी प्रगति शीघ्र होगी। आपमें मोक्ष हेतु प्रबल लालसा तथा तीव्र वैराग्य भी होना चाहिए। आपको लगनशील और दृढ़ संकल्पवान् होना चाहिए। गहन तथा निरन्तर ध्यान समाधि में प्रवेश हेतु आवश्यक है।

सांसारिक मनुष्य का मन मूलभूत कामनाओं और वासनाओं के साथ मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र में भटकता रहता है।

यदि किसी का मन शुद्ध हो जाये, तो यह मणिपूर चक्र में पहुँच जाता है जिससे उसे कुछ शक्ति और आनन्द का अनुभव होता है।

यदि मन और अधिक शुद्ध हो जाता है, तो यह अनाहत चक्र तक उन्नत हो जाता है और उसे आनन्द का अनुभव होता है तथा उसे इष्टदेवता के देदीप्यमान स्वरूप के दर्शन होते हैं।

जब मन अत्यधिक शुद्ध हो जाता है, तब ध्यान तथा भक्ति प्रबल हो जाती है और इस श्रेष्ठ मन का उत्थान विशुद्ध चक्र तक हो जाता है और अब उसे अधिकाधिक शक्ति तथा आनन्द का अनुभव होता है। इस चक्र तक पहुँचने के बाद भी इसके निम्न चक्रों पर आने की सम्भावना होती है।

जब योगी आज्ञा चक्र पर पहुँचता है, तो उसे समाधि प्राप्त होती है और वह परमात्मा अथवा ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

जब वह मस्तिष्क में स्थित आध्यात्मिक केन्द्र सहस्रार चक्र में पहुँचता है, तो योगी को निर्विकल्प समाधि परम चेतनावस्था प्राप्त होती है। वह अद्वैत ब्रह्म के साथ एक हो जाता है। यह चेतना का सर्वोच्च धरातल अथवा परम असम्प्रज्ञात समाधि है। अब कुण्डलिनी शिव से एक हो जाती है।

योगी विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करने तथा अन्यों के कल्याण हेतु विशुद्ध चक्र में वापस आ सकता है।

अध्याय ११

कुण्डलिनी जागरण होने पर अनुभव

कुण्डलिनी जागरण होने पर आपको दिव्य दर्शन होते हैं; दिव्य सुगन्धि, दिव्य स्वाद तथा दिव्य स्पर्श का अनुभव होता है। आपको दिव्य अनादत नाद सुनायी देता है। आपको प्रभु से दिशा-निर्देश प्राप्त होते हैं। ये सभी इस बात के संकेत हैं कि आपके भीतर कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत है। जब मूलाधार में स्पन्दन हो, रोयें खड़े हो जायें, स्वयं ही उड्डियान, जालन्धर और मूल बन्ध लग जाये, तो जानें कि कुण्डलिनी जाग्रत है।

जब श्वास बिना किसी प्रयत्न के रुक जाये, जब बिना प्रयत्न के स्वयं केवल कुम्भक लग जाये, तो जानें कि कुण्डलिनी जाग्रत है। जब आपको ऐसा अनुभव हो कि प्राण शक्ति सहस्रार की ओर उठ रही है, जब आपको आनन्द का अनुभव हो तथा जब आप यान्त्रिक रूप से ॐ का उच्चारण करने लगें, जब मन tilde 7 संसार के कोई विचार न हों, तो जानिए कि कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत है।

जब ध्यान में नेत्र त्रिकुटी पर स्थिर हों, जब शाम्भवी मुद्रा लग जाये, तो जानें कि कुण्डलिनी क्रियाशील है। जब आप शरीर के भीतर विभिन्न भागों में प्राणों के स्पन्दनों का अनुभव करें, जब आपको विद्युत् के झटकों की तरह झटकों का अनुभव हो, तो जानें कि कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो गयी है। यदि आपको ऐसा अनुभव हो कि शरीर है ही नहीं, जब आपकी आँखें बन्द हो जायें और प्रयत्न करने पर भी न खुलें, जब विद्युत् जैसी तरंगें नाड़ियों में ऊपर और नीचे प्रवाहित हों, तो जानें कि कुण्डलिनी जाग्रत हो गयी है।

जब आप ध्यान करें, जब आपको अन्तःप्रेरणा और अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो, जब प्रकृति आपके सामने अपने रहस्य अनावृत करें, सभी सन्देह अदृश्य हो जायें, आप वेदों के अर्थ को स्पष्टतया समझ लें, तो जानें कि आपकी कुण्डलिनी जाग्रत है। जब आप वायु की भाँति हलके हो जायें, जब व्यग्र करने वाली स्थिति में आपका मन सन्तुलित रहे, जब आपके भीतर कार्य करने के लिए अक्षय ऊर्जा हो, तो जानें कि कुण्डलिनी जाग्रत है।

जब आपको दैवी उन्माद प्राप्त हो तथा जब आपमें जन-समूह के मध्य व्याख्यान देने की शक्ति का विकास हो, तो जानें कि कुण्डलिनी क्रियाशील है। जब आप स्वयं ही बिना किसी कष्ट तथा थकान के अनुभव के विभिन्न आसन करने लगें, तो जानें कि कुण्डलिनी क्रियाशील हो गयी है। जब आप सुन्दर श्रेष्ठ भजन, स्तुतियों, कविताओं आदि की स्वयं ही रचना करने लगें, तो जानिए कि कुण्डलिनी क्रियाशील हो गयी है।

योगी अमृत का पान करता है

नाभि के नीचे अग्नि मण्डल है, हृदय के भीतर और ऊपर सूर्य मण्डल है। सिर के भीतर और ऊपर चन्द्रमा का क्षेत्र चन्द्र मण्डल है।

योगी के मस्तिष्क चन्द्र मण्डल से बहुत अधिक मात्रा में अमृत झरता है। योगी इसे अपने संस्थान में अवशोषित कर लेता है और बिना कोई भोजन अथवा पेय ग्रहण किये अनन्त काल तक जीवित रहता है।

वह अमृत जो सिर में स्थित चन्द्र मण्डल से रिसता है, उसे नाभि मण्डल में स्थित अग्नि मण्डल द्वारा उपयोग में ले लिया जाता है। लेकिन सर्वांग आसन तथा विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से यह अमृत सारे शरीर का पोषण करता है। इसलिए इनका अभ्यासी दीर्घायुष्य प्राप्त करता है। शीर्षासन और सर्वांगासन में अग्नि मण्डल उलटा हो जाता है, इस कारण अनि में अमृत नहीं पहुँच पाता और अग्नि इसका उपभोग नहीं कर पाती।

परिशिष्ट

शिव-स्वरोदयम्

महेश्वरं नमस्कृत्य शैलजां गणनायकम् ।
गुरुं च परमात्मानं भजे संसारतारणम् ॥१ ॥

देव्युवाच

देवदेव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो ॥२॥

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते ।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयः ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच

तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्तते ।
तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद् ब्रह्माण्डनिर्णयः ।।४।।

देव्युवाच

तत्त्वमेव परंमूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः ।
तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय ॥५ ॥

ईश्वर उवाच

निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसंभवः ॥६ ॥

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः ।
एतानि पञ्चतत्त्वानि विस्तीर्णानि च पंचधा ॥७॥

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्तते ।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ॥८ ॥

पञ्चतत्त्वमये देहे पञ्चतत्त्वानि सुन्दरि ।
सूक्ष्मरूपेण वर्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः ॥९॥

अथ स्वरं प्रवक्ष्यामि शरीरस्य स्वरोदयम् ।
हंसचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम् ॥१०॥

गुह्याद्गुह्यतमं सारमुपकारप्रकाशनम् ।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तके मणिः ॥११॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यप्रत्ययम् ।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारं स्वस्तिके जने ॥१२॥

अथ शिष्यलक्षणम् शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्त्यैकमानसे ।
दृढचित्ते कृतज्ञे च देयं चैव स्वरोदयम् ।।१३।।

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतल्पगे।
हीनसत्त्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते ॥१४॥

शृणु त्वं कथितं देवि देहस्य ज्ञानमुत्तमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते ॥१५॥

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।
स्वरे च सर्वं त्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ॥१६॥

स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथागृहम् ।
शास्त्रहीनं यथा वक्त्रं शिरोहीनं च यद्वपुः ॥१७॥

नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च।
सुषुम्नामिश्रभेदं च यो जानाति स मुक्तिगः ॥१८॥

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलांत्कृतम् ।
कथयन्ति शुभं केचित्स्वरज्ञानं वरानने ॥१९॥

ब्रह्माण्डखण्डपिण्डाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः।
सृष्टिसंहारकर्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥२०॥

स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम् ।
स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं न वा दृष्टं न वा श्रुतम् ॥२१॥

शत्रु हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमः
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबले कीर्तिः स्वरबले सुखम् ॥२२॥

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरतो राजदर्शनम् ।

स्वरेण देवतासिद्धिः स्वरेण क्षितिपो वशः ॥२३॥

स्वरेण गम्यते देशो भोज्यं स्वरबले तथा ।
लघु दीर्घ स्वरबले मलं चैव निवारयेत् ॥२४॥

सर्वशास्त्रपुराणादि स्मृतिवेदांगपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किंचिद्वरानने ॥ २५ ॥

नामरूपादिकाः सर्वे मिथ्या सर्वेषु विभ्रमः ।
अज्ञानमोहिता मूढा यावत्तत्त्वं न विद्यते ॥ २६ ॥

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ॥२७॥

यस्मै कस्मै परस्मै वा न प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।
तस्मादेतत्स्वयं ज्ञेयमात्मनोवाऽऽत्मनात्मनि ॥२८॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता।
न च विष्टिर्व्यतीपातो वैधृत्याद्या स्तथैव च ॥२९॥

कुयोगो नास्त्यतो देवि भविता वा कथाचन।
प्राप्ते स्वरबलेशुद्धे सर्वमेव शुभं फलम् ॥ ३० ॥

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तरात् ।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवः ॥३१ ॥

नाभिस्थानात्स्कन्धोर्ध्वमंकुरा इव निर्गताः ।
द्विसप्तत्रिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥३२॥

नाडीस्था कुण्डलीशक्तिर्भुजङ्गाकारशायिनी।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्यो दशैवाधः प्रतिष्ठिताः ॥३३॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यो चतुर्विंशतिसंख्यया ।
प्रधाना दश नाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः ॥३४॥

तिर्यगूर्ध्वास्तथा नाड्यो वायुदेहसमन्विताः ।
चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥३५॥

तास मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमाः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥ ३६ ॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।
अलम्बुषा कुहूचैव शङ्खिनी दशमी तथा ।। ३७ ।।

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥३८॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यालम्बुषा ॥३९॥

कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः ॥४०॥

पिङ्गलेडा सुषुम्ना च प्राणमार्गे समाश्रिताः ।
एता हि दशनाड्यस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥४१ ॥

नामानि नाडिकानां तु वातानां तु वदाम्यहम् ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४२॥

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ॥४३ ॥

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः।
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधाना दश वायवः ॥४४॥

प्राणाद्या पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ।
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ॥४५॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकलः क्षुतकृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥४६॥

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनंजयः ।
एते नाडिषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ।॥४७॥

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षयेद्देह मध्यतः ।
इडापिङ्गलासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिसृभिर्बुधः ॥४८॥

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
इडा नाडी स्थितावामा ततो व्यस्ता च पिङ्गला ॥४९॥

इडायां तु स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः ।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हसस्वरूपतः ॥५०॥

हकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारेण प्रवेशनम् ।
हकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ॥५१॥

शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः ।
दक्षनाडीप्रवाहश्च शम्भुरूपो दिवाकरः ॥५२॥

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः ।
तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥५३॥

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गे वै चन्द्रसूर्ययोः ॥५४॥

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥५५ ।।

चन्द्रसूर्यसमभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः ।
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत् ॥५६॥

वामे चामृतरूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम् ।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेस्तदा ॥५७॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु।
सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥५८॥

निर्गमे शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा।
चन्द्रः समः सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥५९॥

चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्यश्चन्द्रो गौरोऽसितो रविः ।
चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत् ॥६०॥

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकार्याणि कारयेत् ।
सुषुम्नायाः प्रवाहेण भुक्तिमुक्तिफलानि च ॥६१ ॥

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करो हि सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि कृतोदया ।।६२ ।।

सार्धद्विषटिके ज्ञेयः शुक्ले कृष्णे शशी रविः ।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टिघटीः क्रमात् ॥६३॥

वहेयुस्तद्वटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत् ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीते विवर्जयेत् ॥६४॥

शुक्लपक्षे भवेद्वामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा।
जानीयात्प्रतिपत्पूर्वं योगी तद्यतमानसः ॥६५ ।।

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवा वारय भास्करम् ।

इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥६६॥

सूर्येण बध्यते सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते ।
यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोक्यं वशगं क्षणात् ॥६७॥

उदयं चन्द्रमार्गेण सूर्येनास्तमनं यदि ।
तदा ते गुणसंधाता विपरीतं विवर्जयेत् ॥६८॥

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः ॥६९॥

अर्काङ्गारकसौरीणां वासरे दक्षनाडिका ।
स्मर्त्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ॥७० ॥

प्रथमं वहते वायुर्द्वितीयं च तथानलः ।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणो वहेत् ॥७१ ॥

सार्द्धद्विघटिके पञ्च क्रमेणैवोदयन्ति च।
क्रमादेकेकनाड्यां च तत्त्वानां पृथगुद्भवः ॥७२ ॥

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादशसंक्रमाः ।
वृषकर्कटकन्यालिमृगमीना निशाकरे ॥७३ ।।

मेषसिंहौ च कुम्भश्च तुला च मिथुनं धनम् ।

उदये दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभविनिर्णयः ।॥७४ ।।

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे।
दक्षनाड्याः प्रसारेतु न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ॥७५ ॥
वामचारप्रवाहे तु न गच्छेत्पूर्व उत्तरे।
परिपन्थिभयं तस्य गतोऽसौ न निवर्त्तते ॥ ७६ ॥

तत्र तस्मान्न गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैषिभिः ।
तदा तत्रा तु संयाते मृत्युरेव न संशयः ॥७७॥

शुक्लपक्षे द्वितायायामर्के वहति चन्द्रमाः।
दृश्यते लाभदः पुंसां सौम्ये सौख्यं प्रजायते ॥७८ ॥

सूर्योदये यदा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रोदये भवेत् ।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रिगतान्यपि ।।७९ ॥

चन्द्रकाले यदा सूर्यं सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् ।
उद्वेगः कलहो हानिः शुभं सर्वं निवारयेत् ॥८०॥

सूर्यस्य वाहे प्रवदन्ति विज्ञा ज्ञानं ह्यगम्यस्य तु निश्चयेन।
श्वासेन युक्तस्य तु शीत रश्मेः प्रवाहकाले फलमन्यथा स्यात् ८१।।

अथ विपरीतलक्षणम्

यदा प्रत्यूषकालेन विपरीतोदयो भवेत् ।
चन्द्रस्थाने वहत्यर्को रविस्थाने च चन्द्रमाः ॥८२॥

प्रथमे मनउद्वेगं धनहानिद्वितीयके ।
तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाशं चतुर्थके ॥८३॥

पञ्चमे राज्यविध्वंसं षष्ठे सर्वार्थनाशनम् ।
सप्तमे व्याधिदुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत् ॥८४॥

कालत्रये दिनान्यष्टौविपरीतं यदा वहेत् ।
तदा दुष्टफलंप्रोक्तं किंचिन्न्यूनं तु शोभनम् ॥८५॥

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रः सायंकाले दिवाकरः ।
तदा नित्यं जयो लाभो विपरीतं विवर्जयेत् ॥८६॥

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवः ।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा ॥८७॥

चन्द्रः समपदः कार्यों रविस्तु विषमः सदा ।
पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥८८॥

यत्रांगे वहते वायुस्तदंगकरसंतलात् ।
सुप्तोत्थतो मुखं स्पृष्ट्वा लभते वाञ्छितं फलम् ॥८९॥

परदत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च।
यदंगे वहते नाडी ग्राह्यं तेन करांघ्रिणा ॥९० ।।

न हानिः कलहो नैव कण्टकैर्नापि भिद्यते।
निवर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः ॥९१ ।।

गुरुबन्धुनृपामात्येष्वन्येषु शुभदायिनी।
पूर्णांगे खलु कर्त्तव्या कार्यसिद्धिर्मनः स्थिता ॥९२ ॥

अग्निचोराधर्माधर्मा अन्येषां वादिनिग्रहः ।
कर्त्तव्याः खलु रिक्तायां जयलाभसुखार्थिभिः ।॥९३॥

दूरदेशे विधातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीप्ते तु करणावितिकेचन ॥९४॥

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टं लाभादिसमरागमः ।
तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम् ॥९५॥

शून्यनाड्या विपर्यस्तं यत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥९६॥

व्यवहारे खलोच्चाटे द्वेषिविद्यादिवश्यके ।
कुपितस्वामिचोराद्ये पूर्णस्था:स्युर्भयंकराः ॥९७॥

दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नोऽभीष्टसिद्धिदः ।
प्रवेशकार्य हेतौ च सूर्यनाडी प्रशस्यते ॥९८॥

अयोग्ये योग्यता नाड्या योगस्थानेप्ययोग्यता ।
कार्यानुवन्धिनी जीव यथा रुद्रस्थता चरेत् ॥९९॥

चन्द्रचारे विषयते सूर्यो बलिवशंनयेत् ।
सुषुम्नायां भवेन्मोक्ष एको देवस्त्रिथा स्थितः ॥१००॥

शुभान्यशुभकार्याणि क्रियन्ते ऽहर्निशं यदा।
तदाकार्यानुरोधेन कार्यं नाडीप्रचालनम् ॥१०१ ॥

अथ इडा
स्थिरकर्मण्यलंकारे दूराध्वगमने तथा ।
आश्रमे धर्मप्रसादे वस्तूनां संग्रहेऽपि च ॥ १०२ ॥
वापीकूपतडागादेः प्रतिष्ठास्तंभदेवयोः ।
यात्रादान विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे ॥१०३ ॥

शान्तिकेपौष्ठिके चैव दिव्योषधिरसायने ।
स्वस्वामिदर्शने मित्रे वाणिज्ये कणसंग्रहे ॥१०४ ॥

गृहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने।
शुभकर्माणि संधौ च निर्गमे च शुभः शशी ॥१०५ ॥

विद्यारम्भादिकार्येषु बान्धवानां च दर्शने।
जन्ममोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मन्त्रसाधने ॥१०६॥

कालविज्ञानसूत्रे तु चतुष्पादगृहागमे ।
कालव्याधिचिकित्सायां स्वामिसंबोधने तथा ॥ १०७॥

गजाश्वारोहणे धन्विगजाश्वानां च बंधने ।

परोपकरणेचैव निधीनां स्थापने तथा ॥ १०८॥

गीतवाद्यादिनृत्यादौ नृत्यशास्त्रविचारणे।
पुरग्रामनिवेशे च तिलकक्षेत्रधारणे ॥ १०९ ॥

आर्तिशोकविषादेषु ज्वरितेमूर्छितेऽपि वा।
स्वजनस्वामिसम्बन्धे अन्नादेर्दारुसंग्रहे ॥ ११० ॥

स्त्रीणां दन्तादिभूषायां वृष्टेरागमने तथा ।
गुरुपूजाविषादीनां चालने च वरानने ।।१११ ।।

इडायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च।
तत्रापि वर्जयेद्वायुं तेज आकाशमेव च ॥११२॥

सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ॥११३॥

कठिनक्रूरविद्यानां पठने पाठने तथा।
स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहणे ॥११४॥

भ्रष्टकार्ये सुरापाने वीरमंत्राद्युपासने ।
विह्वलोद्ध्वंसदेशादौ विषदानेचवैरिणाम् ॥११५ ॥

शास्त्राभ्यासे च गमने मृगयापशुविक्रये ।
इष्टिकाकाष्ठपाषाणरत्नघर्षणदारणे ॥ ११६ ॥

गत्यभ्यासे यंत्रतंत्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथसाधनवाहने ॥११७॥

व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिकसाधने ।
यक्षिणीयक्षवेतालविषभूतादिनिग्रहे ॥ ११८ ॥

खरोष्ट्रमहिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा।
नदीजलौषधतरणे भेषजे लिपिलेखने ॥ ११९ ॥

मारणे मोहने स्तंभे विद्वेषोच्चाटने वशे।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ॥१२०॥

प्रेताकर्षणविद्वेषशत्रुनिग्रहणेऽपि च।
खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने।
भोज्ये स्नाने व्यवहारे दीप्तकार्ये रविः शुभः ॥१२१ ॥

भुक्तमार्गेण मन्दाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि ।

शयनं सूर्यवाहेन कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ॥१२२॥

क्रूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च।
तानिसिद्ध्यन्ति सूर्येणात्रकार्याविचारणा ॥१२३ ॥

अथ सुषुम्ना

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ॥१२४॥

तस्यां नाड्यां स्थितो वह्निर्ध्वलते कालरूपकः।
विषवत्तं विजानीयात्सर्वकार्यविनाशकम् ॥१२५ ॥

दयाऽनुक्रममुल्लङ्घ्य यस्य नाडीद्वयं वहेत् ।
तदा तस्य विजानीयादशुभं नात्र संशयः ॥ १२६ ॥

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत् ।
विपरीतं फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने ॥ १२७॥

उभयोरेव संचारं विषवत्तं विदुर्बुधाः ।
न कुर्यातक्रूर-सौम्यानि तत्सर्वं विफलं भवेत् ॥१२८॥

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभे जयाजये।
विषमे विपरीते च संस्मरेज्जगदीश्वरम् ॥१२९ ॥

ईश्वरे चिन्तिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं जयलाभसुखैषिभिः ॥१३० ॥

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः ।
शापं दद्याद्वरं दद्यात्सर्वथैव तदन्यथा ॥ १३१ ॥

नाडीसंक्रमणे काले तत्त्वसंगमनेऽपि च।
शुभं किंचिन्न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि किंचन ॥१३२॥

विषमस्योदयो यत्र मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।
यात्रा हानिकरी तस्य मृत्युः क्लेशो न संशयः ॥१३३ ॥

पुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतो रविः ।
पूर्णारिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा ।।१३४।।

ऊर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथे स्थितः ।
पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्तात्सूर्यवाहागतः शुभः ॥१३५ ॥

अनादिर्विषमः संधिर्निराहारो निराकुलः ।
परे सूक्ष्मे विलीयेत सा सन्ध्या सन्धिरुच्यते ॥ १३६ ॥

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो वेदो न विद्यते ।
परात्मा वेद्यते येन स वेदो वेद उच्यते ॥१३७॥

स सन्ध्यां सन्धिरित्याहुः सन्ध्या सन्धिर्निगद्यते ।
विषमः सन्धिगः प्राणः स संधिः संधिरुच्यते ॥१३८॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वसंसारतारक ।
स्थितंत्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ॥१३९ ।।

ईश्वर उवाच

स्वरज्ञानरहस्यात्तत् न काचिच्चेष्टदेवता ।
स्वरज्ञानरतो योगी स योगी परमो मतः ॥१४०।।

पञ्चतत्त्वाद्भवेत्सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते ।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥ १४१ ॥

तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिभिः ।
भूतानां तुष्टचिह्नानि जानातीह स्वरोत्तमः ॥१४२ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पञ्चभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः ॥१४३ ।।

सर्वलोकस्थजीवानां न देहो भिन्नतत्त्वकः ।
भूलोकात्सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक्पृथक् ॥१४४॥

वामे वा दक्षिणे वाऽपि उदयाः पञ्च कीर्तिताः ।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ॥१४५ ॥

प्रथमे तत्त्वसंख्यानं द्वितीये श्वाससंधयः ।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥१४६॥

पञ्चमे तस्य वर्णाश्च षष्ठे तु प्राण एव च।
सप्तमे स्वादसंयुक्ता अष्टमे गतिलक्षणम् ॥१४७॥

एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।
स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजेक्षणे ॥१४८ ॥

निरीक्षितव्यं यत्नेन सदा प्रत्यूष कालतः ।
कालस्य वञ्चनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः ॥१४९ ॥

श्रुत्योरंगुष्ठकी मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये।
वदनप्रान्तके चान्यांगुलीर्दद्याच्च नेत्रयोः ॥१५० ॥

अस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्व ज्ञानं भवेत्क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्बिन्दुभिर्निरुपाधिकम् ॥१५१ ॥

दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वास विनिः क्षिपेत् ।
आकारैस्तु विज्ञानीयात्तत्त्व भेदं विचक्षणः ॥१५२ ॥
चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलम् स्मृतम् ।
बिन्धुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥१५३॥

मध्ये पृथ्वी ह्यथश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः ।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे ॥१५४॥

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः ।
मारुतो नीलजीमूत आकाशः सर्ववर्णकः ॥१५५ ॥

अथ स्थानपरत्व से तत्त्वज्ञान

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्नाभिमूले प्रभञ्जनः ।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः ।।१५६ ।।

अथ स्वाद से तत्त्वज्ञानप्रकार

माहेयं मधुरं स्वादे कषायं जलमेव च।
तीक्ष्णं तेजः समीरोऽम्ल आकाशं कटुकं तथा ॥ १५७॥

अथ गति से तत्त्वज्ञान

अष्टांगुलं वहेद्वायुरनिलश्चतुरंगुलम् ।
द्वादशांगुलं माहेयं वारुणं षोडशांगुलम् ॥१५८ ॥

ऊर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्र मध्यमम् ॥१५९॥

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसि क्रूरकर्माणि मारणोच्चाटने ऽनिले ॥ १६० ॥

व्योम्नि किंचिन्न कर्व्यमभ्यसेद्योगसेवनम् ।

शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ॥१६१ ॥

पृथिवीजलाभ्यां सिद्धिःस्यान्मृत्युर्वह्नौ क्षयोऽनिले ।
नभसो निष्फलं सर्वे ज्ञातव्यं तत्त्ववादिभिः ।।१६२ ।।

चिरलाभः क्षितेज्ञेयस्तत्क्षणे तोयतत्त्वतः ।
हानिःस्याद्वह्निवाताभ्यां नभसोनिष्फलं भवेत् ॥१६३ ॥

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद्गुरुध्वनिः ।
कवोष्णः पार्थिवो वायुःस्थिरकार्यप्रसाधकः ॥१६४॥

अधोवाही गुरुध्वानः शीघ्रगः शीतलः स्थितः ।
यत्षोडशांगुलो वायुः स आपः शुभकर्मकृत् ॥१६५॥

आवर्तगश्चात्युष्णाश्च शोणाभश्चतुरंगुलः ।
ऊध्र्वे वाही च यः क्रूरकर्मकारी स तेजसः ॥१६६॥
उष्णः शीतः कृष्णवर्णस्थिर्यगाभ्यष्टकांगुलः ।
वायुः पवनसंज्ञस्तु चरकर्मप्रसाधकः ॥१६७॥

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः ।
अम्बरं तं विजानीयाद्योगिनां योगदायकम् ॥१६८ ॥

पीतवर्णं चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम् ।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशांगुलम् ॥१६९॥

श्वेतमर्धेन्दुसंकाशं स्वादुकाषायमार्द्रकम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशांगुलम् ॥१७० ॥

रक्तं त्रकोणं तीक्ष्णं च ऊर्ध्वभागप्रवाहकम् ।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरंगुलम् ॥१७१ ॥

नीलं च वर्तुलाकारं स्वाद्वम्ल तिर्यगाश्रितम् ।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेष्टांगुलं स्मृतम् ॥१७२॥

वर्णाकारे स्वादुवाहे अव्यक्त सर्वगामिनाम् ।
मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम् ॥१७३ ॥

पृथ्वी जले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभो व्योममारुतौ ।।१७४ ।।

आपूर्वपश्चिमे पृथ्वी तेजश्च दक्षिणो तथा।
वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्ये कोणगतं नभः ॥१७५ ॥

चन्द्रे पृथ्वीजले स्यातां सूर्येऽग्निर्वा यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्न सन्देहः सौम्या सौम्येषु कर्मसु ॥ १७६ ॥

लाभः पृथ्वीकृतोह्निः स्यान्निशायां लाभकृज्जलम् ।
वह्नौ मृत्युःक्षयो वायुर्ननभस्थानंदहेत्क्वचित् ॥१७७॥

जीवितव्ये जये लाभे कृष्यां च धनकर्मणि ।
मन्त्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ।।१७८ ॥

आयाति वारुणे तत्त्वे शत्रुरस्ति शुभः क्षितौ ।
प्रयाति वायुतोऽन्यत्र हानिमृत्यु नभोऽनले ॥१७९ ॥

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जीवस्य जलवातयोः ।
तेजसा धातुचिंतास्याच्छून्यमाकाशतो वदेत् ॥१८०॥

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदस्तोयवायुतः ।
तेजस्येव चतुष्पादो नभसा पादवर्जितः ॥१८१ ॥

कुजो वह्निः रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः ।
वायुस्थानस्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रप्रवाहकः ॥१८२॥

जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः ।
वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वकार्येषु निश्चिताः ॥१८३॥

पृथ्वी बुधो जलादिन्दुः शुक्रो वह्निः रविः कुजः ।
वायु राहुशनी व्योम गुरुरेवं प्रकीर्तितः ॥९८४॥

प्रवासप्रश्न आदित्ये यदि राहुर्गतोऽनिले ।
तदासौ चलितो ज्ञेयः स्थानान्तरमपेक्षते ॥१८५ ॥

आयाति वारुणे तत्त्वे तत्रैवास्ति शुभः क्षितौ ।
प्रवासी पवनेऽन्यत्र मृत्युरेवानले भवेत् ॥१८६॥

पार्थिवे मूलविज्ञानं शुभं कार्यं जले तथा।
आग्नेये धातुविज्ञानं व्योम्नि शून्यं विनिर्दिशेत् ॥१८७॥

तुष्टिः पुष्टी रतिः क्रीडा जयहर्षी धराजले ।
तेजो वाय्वोश्च सुप्ताक्षो ज्वरकम्पः प्रवासिनः ॥१८८ ॥

गतायुमृत्युराकाशो तत्त्वस्थाने प्रकीर्तिताः ।
द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या देशिकैः सदा ॥१८९॥

पूर्वायां पश्चिमे याम्ये उत्तरस्यां यथाक्रमम् ।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ॥१९० ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पञ्चभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने ।।१९१ ॥

अस्ति मांसं त्वचा नाडी रोमं चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१९२॥

शुक्रशोणितमज्जा च मूत्रं लाला च पञ्चमम् ।
आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१९३ ॥

क्षुधा तृषा तथा निद्रा कान्तिरालस्यमेव च।
तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१९४॥

धावनं चलनं ग्रन्थः संकोचनप्रसारणे ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१९५॥

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।
नभः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१९६ ॥

पृथिव्याः पलानि पञ्चाशच्चत्वारिंशत्तथाम्भसः ।
अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥१९७॥

पृथिव्यां चिरकालेन लाभश्चापः क्षणाद्भवेत् ।
जायते पवने स्वल्पः सिद्धोऽप्यग्नी विनश्यति ॥१९८॥

पृथिव्याः पञ्च ह्यपां वेदा गुणास्तेजो द्विवायुतः ।
नभस्येकगुणश्चैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत् ॥१९९॥

फूत्कारकृत्प्रस्फुटिता विदीर्णा पतिता धरा।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ॥२००॥

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठाऽनुराधा श्रवणं तथा।
अभिजिदुत्तराषाढापृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥२०१ ॥

पूर्वाषाढा तथाऽश्लेषा मूलामाद्रा च रेवती।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्त्वं शतभिषक् प्रिये ॥ २०२ ॥

भरणी कृत्तिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुनी।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाती तेजस्तत्त्वमिति प्रिये ॥ २०३॥

विशाखोत्तरफाल्गुन्यौ हस्तचित्रे पुनर्वसुः ।

अश्विनीमृगशीर्षे च वायुतत्त्वमुदाहृतम् ॥२०४॥

वहन्नाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं सिद्धिमाप्नोति शून्ये शून्यं न संशयः ॥२०५॥

पूर्णोऽपि निर्गमश्वासे सुतत्त्वेऽपि न सिद्धिदः ।
सूर्यश्चन्द्रोऽथवा नृणां संग्रहे सर्वसिद्धिदः ॥२०६॥

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुतत्त्वे च धनंजयः ।
कौरवा निहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्ययात् ॥२०७॥

जन्मान्तरीयसंस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः ।
केषांचिज्जायते तत्त्ववासना विमलात्मनाम् ॥ २०८ ॥

लंबीजे धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम् ।
सुगन्धां स्वर्णवर्णाभां प्राप्नुयाद्देहलाघवम् ॥२०९॥

वंबीजं वारणं ध्यायेत्तत्त्वमर्धशशिप्रभम् ।
क्षुत्तृष्णादिसहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम् ॥२१०॥

रंबीजमग्निजं ध्यायेत्त्रिकोणमरुणप्रभम् ।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥२११ ॥

यंबीजं पावनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामलप्रभम् ।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्गमनं तथा ॥ २१२ ॥

हंबीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम् ।
ज्ञानं त्रिकालवीषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥२१३॥

स्वरज्ञानी नरो यत्र धनं नास्ति ततः परम् ।
गम्यते स्वरज्ञानेन ह्यनायासं फलं भवेत् ॥२१४॥

श्रीदेव्युवाच
देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।
त्रिकालविषयं चैव कथं भवति शंकर ॥२१५ ॥

श्रीशिव उवाच

अर्थकालजयप्रश्न शुभाशुभमिति त्रिदा ।
एतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुन्दरि ।।२१६ ।।

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयौ।
तत्त्वे सुभिक्षदुर्भिक्षे तत्त्वं त्रिपादमुच्यते ॥२१७॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वसंसारसागरे।
किंनराणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम् ॥२१८॥

ईश्वर उवाच

प्राण एव परं मित्रं प्राण एव परः सखा।
प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ।।२१९ ॥

श्रीदेव्युवाच

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहः किं प्राणरूपकः ।
तत्त्वेषु संचरन्प्राणो ज्ञायते योगिभिःकथम् ॥२२० ॥

श्रीशिव उवाच

कायानगरमध्यस्थो मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलः ॥२२१ ॥

गमने तु चतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तु धावने।
मैथुने पञ्चषष्टिश्च शयने च शतांगुलम् ॥ २२२॥

प्राणस्य तु गतिर्देवि स्वभावाद्वादशांगुला।
भोजने वमने चैव गतिरष्टादशांगुला ॥२२३ ॥

एकांगुले कृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता ।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात्कविशक्तिस्तृतीयके ॥२२४॥

वाचासिद्धिश्चतुर्थे च दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।
षष्ठे त्वाकाशगमनं चंडवेगश्च सप्तमे ॥ २२५॥

अष्टमे सिद्धयश्चैव नवमे निधयो नव।
दशमे दशमूर्तिश्च छाया नैकादशे भवेत् ॥२२६॥

द्वादशे हंसचारश्च गङ्गामृतरसं पिबेत्।
आनखाग्रं प्राणपूर्ते कस्य भक्ष्यं च भोजनम् ॥२२७॥
एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः ।
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ॥२२८॥

प्रातश्चंद्रो रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते।
मध्याह्नान्मध्यरात्रश्च परतस्तु प्रवर्तते ॥ २२९ ॥

दुरयुद्धे जयी चन्द्रः समासन्ने दिवाकरः ।
वहन्नाड्यागतः पादः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२३०॥

यात्रारम्भे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके।
शुभकार्याणि सिद्ध्यन्ति चंद्रवाहेषु सर्वदा ॥२३१॥

अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्त्वे च युक्ते
यदि वहति कदाचिदैवयोगेन पुंसाम् ।
स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण
प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके ॥ २३२ ॥

रक्ष जीवं रक्ष जीवं जीवांगे परिधाय च।
जीवो जपति यो युद्धे जीवञ्जयति मेदिनीम् ॥२३३॥

भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु।
वह्नौ वायौ प्रदीप्तेषु खे पुनर्नोभयेष्वपि ॥२३४॥

जीवेन शास्त्रं बध्नायाज्जीवेनैव विकासयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धेजयति सर्वदा ॥२३५॥

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम् ।
समुत्तरे पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२३६ ॥

आपूर्ण शत्रुसामग्रीं पूर्ण वा स्वबलं तथा ।
कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुंधराम् ॥२३७ ॥

या नाडी वहते चाने तस्यामेवाधिदेवता ।
सम्मुखेऽपदिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ॥२३८ ॥

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत् ।
सर्पमुदा कृता येन तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥२३९ ॥

भटाः समायान्ति च योद्धुकामाः
चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे।
समीरणस्तत्त्वविदां प्रतीतो
या शून्यता सा प्रतिकार्यनाशम् ॥२४० ॥

यां दिशां वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत् ।
जयत्येव न संदेहः शक्रोऽपि यदि चाग्रतः ॥२४१॥

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदंगे प्राणमेव च।

आकृष्य गच्छेत्कर्णान्तं प्राणमेव पुरन्दरम् ॥२४२॥
प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णाङ्गं योऽभिरक्षति ।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ॥ २४३ ॥

अंगुष्ठतर्जनीवंशे पादांगुष्ठे तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले च कर्तव्यो लक्षयोध्दुजयो भवेत् ॥२४४॥

निशाकरो रवौ चारे मध्ये यस्य समीरणः ।
स्थितो रक्षेद्दिगन्तानि जयकांक्षीगतः सदा ॥ २४५ ॥

श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वांछितम् ।
तस्यार्थः सिद्धिमायाति निर्गमे नैव सुन्दरि ॥ २४६ ॥

लाभादीन्यपि कार्याणि पुष्टानि कीर्तितानि च।
जीवे विंशति सिद्ध्यंति हार्निनिःसरणे भवेत् ॥२४७॥

नरे दक्षा स्वकीया च स्त्रियां वामा प्रशस्यते।
कुम्भको युद्धकाले च तिस्रो नाड्यस्त्रयीगतिः ॥२४८ ॥

हकारस्य सकारस्य विना भेदं स्वरः कथम् ।
सोऽहं हंसपदेनैव जीवो जयति सर्वदा ॥ २४९ ॥

शून्यांग पूरीतं कृत्वा जीवांगे गोपयेज्जयम् ।
जीवांगे घातमाप्नोति शून्यांगं रक्षते सदा ॥ २५० ॥
वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।
पूर्णे घातो न जायेत शून्ये घातं विनिर्दिशेत् ॥२५१ ॥

भूतत्त्वेनोदरे घातः पदस्थानेऽम्बुना भवेत् ।
ऊरुस्थानेऽग्नितत्त्वेन करस्थाने च वायुना ॥ २५२ ॥

शिरसि व्योमतत्त्वे च ज्ञातव्यो घातनिर्णयः ।
एवं पञ्चविधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः ॥ २५३॥

युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।
यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तदा ॥२५४॥

जयमध्ये तु संदेहे नाडीमध्यं तु लक्षयेत् ।
सुषुम्नायां गते प्राणे समरे शत्रुसंकटः ॥२५५ ॥

यस्या नाड्याँ भवेच्चारस्तां दिशं युधि संश्रयेत् ।
तदाऽसौ जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २५६॥

यदि संग्रामकाले तु वामनाडी सदा वहेत् ।

स्थायिनो विजयं विद्याद्रिपुवश्यादयोऽपि च ॥ २५७॥

यदि संग्रामकाले तु सूर्यस्तु व्यावृतो वहेत् ।
तदा यायिजयं विद्यात्सदेवासुरमानवे ॥ २५८ ॥

रणे हरति शत्रुस्तं वामायां प्रविशेन्नरः ।
स्थानं विषुवचारेण जयः सूर्येण धावता ॥२५९॥

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमे जयः ।
रिक्ते चैव द्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ॥ २६० ॥

पूर्णनाडीगतः पृष्ठे शून्यांगं च तदाग्रतः ।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्भियते नात्र संशयः ।।२६१ ।।

वामचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत् ।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः ।।२६२ ।।

यदा पृच्छति चन्द्रस्य तदा सन्धानमादिशेत् ।
पृच्छेद्यदा तु सूर्यस्य तदा जानीहि विग्रहम् ।।२६३ ।।

पार्थिवे च समं युद्धसिद्धिर्भवति वारुणे ।
युद्धे हि तैजसो भंगो मृत्युर्वायौ नभस्यपि ।। २६४ ।।

निमित्तकपमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।
पृच्छाकाले तदा कुर्यादिदं यत्नेन बुद्धिमान् ।।२६५ ।।

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तान्निपातयेत् ।
पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्यं वा तत्परं भवेत् ।।२६६ ।।

तिष्ठानुपविशंश्चापि प्राणमाकर्षयन्निजम् ।
मनोभंगमकुर्वाणः सर्वकार्येषु जीवति ।।२६७ ।।

ना कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगः ।
न शत्रुव्याधिचोराद्याः शून्यस्थानाशितुं क्षमाः ।।२६८ ।।

जीवेन स्थापयेद्वायुं जीवेनारम्भयेत्पुनः ।
जीवेन क्रीडते नित्यं द्यूते जयति सर्वथा ।।२६९ ।।

स्वरज्ञानबलादग्रे निष्फलं कोटिधा भवेत् ।
इहलोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ।।२७० ।।

दश शतायुतं लक्षं देशाधिपबलं क्वचित् ।
शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलं कोटिगुणं भवेत् ।।२७१ ।।

देव्युवाच

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्तो जयस्त्वया।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ।।२७२ ।।

ईश्वर उवाच

ध्यायेद्देवं स्थिरो जीवं जुहुयाज्जीवसंगमे ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥ २७३ ॥
निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सबलं जगत् ।
तत्साकार निराकार ज्ञाने भवति तत्क्षणात् ॥ २७४॥

श्रीदेव्युवाच

नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर।
इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद ॥ २७५ ॥

ईश्वर उवाच

चन्द्र सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।
आजन्मवशगा रामा कथितोऽयं तपोधनैः ॥ २७६ ॥

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते।
जीवस्थाने गतो जीवो बालाजीवान्तकारकः ॥ २७७ ॥

रात्र्यन्तयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मजीवं पिबेद्यस्तु बालाप्राणहरो नरः ॥ २७८ ॥

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन्काले गते सति।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ॥ २७९ ॥

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा।
यः सूर्येण पिबेश्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ॥२८० ॥

शिव आलिङ्गयते शक्त्या प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनीशतम् ॥२८१ ॥

नव सप्त त्रयः पञ्च वारान्संगस्तु सूर्यभे।
चन्द्रे द्वितुर्यषट्कृत्वा वश्या भवति कामिनी ॥२८२॥

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ट्योः ।
महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा वारंवारमिदं चरेत् ॥२८३॥

आप्राणमिति पद्मश्च यावन्निद्रावशं गता ।
पश्चाज्जाग्रतिवेलायां चोष्येते गलचक्षुषी ॥२८४॥

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनीः
इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥२८५ ॥

अथ गर्भकरणम्

ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽह्न यदा भवेत् ।
सूर्यचन्द्रमसोर्योगे सेवनात्पुत्रसंभवः ॥२८६ ॥

शङ्खवल्लीं गवां दुग्धे पृथ्य्यापो वहते यदा ।
भर्तुरेवं वदेद्वाक्यं दर्षं देहि त्रिभिर्वचः ॥२८७ ॥

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत् ।
रूपलावण्यसंपन्नो नरसिंहः प्रसूयते ॥ २८८ ॥

सुषुम्नासूर्यवाहेन ऋतुदानं तु योजयेत् ।
अंगहीनः पुमान्यस्तु जायतेऽत्र कुविग्रहः ॥२८९ ॥

विषमांके दिवारात्रौ वीषमांके दिनाधिपः।
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥२९० ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकरः ।
उभयोः संगमे प्राप्ते वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ २९१ ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां शुक्रान्ते च सुधाकरः।
अनेन क्रमयोगेन नादत्ते दैवदारुकम् ॥२९२॥

चन्द्रनाडी यदा प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।
सूर्यो भवेत्तदा पुत्रो द्वयोर्गर्भो विहन्यते ॥ २९३ ॥

पृथ्वी पुत्री जले पुत्रः कन्यका तु प्रभञ्जने ।
तेजसि गर्भपातः स्वान्नभस्यपि नपुंसकः ॥२९४॥

चन्द्रं स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्ये मार्गे नपुंसकः ।
गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्ण पुत्रः प्रजायते ॥ २९५॥

शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे।
तत्त्ववित्स विजानीयात्कथितं तत्तु सुंदरि ॥ २९६ ॥

गर्भादानं मारुते स्याच्च दुःखी
दिक्षु ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः ।
गर्भस्रावः स्वल्पजीवश्च वह्नौ
भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ॥२९७॥

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवानर्थसंस्थितिः ।
स्यान्नित्यं वारुणे तत्त्वे व्योम्नि गर्भो विनश्यति ॥ २९८ ॥

माहेन्द्रे सुसुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत् ।
शेषेसु गर्भहानिःस्याज्जातमात्रस्य वा मृतिः ॥२९९ ॥

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः ।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेदशास्त्रकोटिभिः ॥३०० ॥

अथ संवत्सरफलम्

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदतः ।
पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे ॥ ३०१॥

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोऽत्र तत्त्वतः ।
पृथिव्यापस्तथा वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम् ॥ ३०२॥
तेजोव्योम्नोर्भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः ।
एवं तत्त्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि ॥ ३०३ ॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु।
देशभंगमहारोगक्लेशकष्टादिदुःखदा ॥ ३०४ ॥

मेषसंक्रान्तिवेलायां स्वरभेदं विचारयेत् ।
संवत्सरफलं ब्रूयाल्लोकानां तत्त्वचिन्तकः ॥३०५॥

पृथिव्यादिकतत्त्वेन दिनमासाब्दजं फलम् ।
शोभनं च यथा दुष्टं व्योममारुतवह्निभिः ॥३०६ ॥

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्यात् बहुसस्या वसुन्धरा ।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि ॥३०७॥

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च।
बहुसस्या तथा पृथ्वी अप्तत्त्वं वै वहेद्यदि ॥३०८॥

दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति ।
अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नितत्त्वं वहेद्यदि ॥३०९ ॥

उत्पातोपद्रवा भीतिरल्पा वृद्धिः स्युरीतयः ।

मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि ॥३१० ॥

मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि ।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्य च ॥३११ ॥

पूर्णप्रवेशने श्वासे सस्यं तत्त्वेन सिध्यति ।
सूर्यचन्द्रेऽन्यथाभूते संग्रह सर्वसिद्धिदः ॥३१२ ॥

विषमे वह्नितत्त्वं स्याज्ज्ञायते केवलं नभः।
तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहो द्विमासे च महार्घता ॥३१३ ॥

रवौ संक्रमते नाडी चन्द्रमन्ते प्रसर्पिता ।
खानिले वह्नियोगेन रौरवं जगतीतले ॥३१४।।

अथ रोगप्रकरणम्

महीतत्त्वे स्वरोगश्च जले च जलमातृतः ।
तेजसि खेटवाटीस्था शाकिनो पितृदोषतः ॥३१५ ।।॥

आदौ शून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि ।
मूर्च्छितोऽपि ध्रुवं जीवेद्यदर्थे परिपृच्छति ॥ ३१६ ।।

यस्मिन्नन्ने स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति ।
तदा जीवति जीवोऽसौ यदि रोगैरुपद्रुतः ॥३१७ ॥

दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत् ।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत् ॥३१८॥

जीवाकारं चा वा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च।
जीवस्थो जीवितप्रश्ने तस्य स्याज्जीवितं फलम् ॥३१९॥

वामचारे तथा दक्षप्रवेशे यन्त्र वाहने ।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥३२० ॥

प्रश्ने चाधः स्थिता जीवो नूनं जीवो हि जीवति ।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवो याति यमालयम् ॥ ३२१॥

विपरीताक्षरप्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ।। ३२२ ।।

चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने तु पृच्छकः ।
तदा प्राणवियुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः ।। ३२३ ।।

पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति ।
तदाऽपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ।।३२४ ।।

एकस्य भूतस्य विपर्ययेण
रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ।
तयोर्द्वयोर्बन्धुसुहृद्विपत्तिः पक्षक्षये
व्यत्ययतो मृतिः स्यात् ।।३२५ ।।

अथ कालप्रकरणम्

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ।
क्षयकालं परीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ।।३२६ ।।

पञ्चभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिञ्चितम् ।
रक्षयेत्सूर्यवातेन प्राणी जीवः स्थिरो भवेत् ।।३२७ ।।

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्य बन्धयते यदि।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वञ्चिते ।।३२८ ।।
गगनात्स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत् ।
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ।।३२९ ।।

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यो दिवाकरः ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्रसंशयः ।।३३० ।।

आहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ।
तदा तस्य भवेन्मृत्युः संपूर्ण वत्सरत्रये ।।३३१ ।।

आहोरात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदा गतिः ।
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ।।३३२ ।।

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः ।
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदति मनीषिणः ।।३३३ ।।

रात्रौ चन्द्रौ दिवा सूर्यो बहेद्यस्य निरन्तरम् ।
जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यंतरे भवेत् ।।३३४ ।।

लक्ष्यं लक्षितलक्षणेन सलिले भानुर्यदा दृश्यते
क्षीणो दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरः षट्त्रिद्विमासैकतः ।
मध्यं छिद्रमिदं भवेद्दशदिनं धूमाकुलं तद्दिने
सर्वज्ञैरपि भाषितं मुनिवरैरायुः प्रमाणं स्फुटम् ।।३३५ ।।

दूतः रक्तकषायकृष्णवसनो दन्तक्षतो

मुण्डितस्तैलाभ्यक्तशरीररज्जुककरो दीनोऽश्रुपूर्णोत्तरः ।
भस्माङ्गारकपालपाशमुसली सूर्यास्तमायाति यः काली
शून्यपदस्थितो गद्युतः कालानलस्यादृतः ।।३३६ ।।

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सन्निपाताग्रलक्षणम् ।।३३७ ।।

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत् ।
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ।। ३३८ ।।

दुष्टशब्देषु रमतेऽशुद्धशब्देषु चाप्यति ।
पश्चात्तापो भवेदस्य तस्य मृत्युर्नसंशयः ।।३३९ ।।
हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ।
महावैद्यो भवेद्यस्य तस्य मृत्युभवेध्रुवम् ।।३४० ।।

जिह्वां विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं सन्मातृकामंडल-
मेतान्येवमरुन्धतीममृतगुं शुक्र ध्रुवं वा क्षणम् ।
एतेष्वेकमपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः
सोऽवश्यं विशतीह कालवदनं संवत्सरादूर्ध्वतः ।॥३४१ ।।

अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वहेः शीतांशुमालिनः ।
दृष्ट्वैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं न जीवति ।। ३४२ ।।

वाप्यां पुरीषमूत्राणि सुवर्ण रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति ।। ३४३ ।।

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्णं च कषान्वितम् ।
विरूपाणि च भूतानि नवमासान्न जीवति ।।३४४ ।।

स्थूलाङ्गोऽपि कृशः कृशोऽपि सहसा स्थूलत्वमालभ्यते
प्राप्तो वा कनकप्रभां यदि भवेत्क्रूरोऽपि कृष्णच्छविः ।
शूरो भीरुसुधीरधर्मनिपुणः शांतो विकारी पुमानित्येवं
प्रकृती प्रयाति चलनं मासाष्टकं जीवति ।।३४५ ।।

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वामूले तथा स्याद्र रुधिरं च कृष्णम् ।
विद्वं न च ग्लायति यत्र दृष्ट्या जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासम् ।।३४६ ।।

मध्यांगुलीनां त्रितयं न वक्रं रोगं विना शुष्यति यस्य कण्ठः
मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाढ्यात्- षद्भिःस मासैः प्रलयं प्रयाति ।।३४७ ।।

न यस्य स्मरणां किञ्चिद्विद्यते भूतकर्मणि ।
सोऽवश्यं पञ्चमे मासि स्कन्धारूढो भविष्यति ।। ३४८ ।।

यस्य न स्फुरति ज्योतिः पीड्यते नयनद्वयम् ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ।।३४९ ।।

दन्ताश्य वृषणौ यस्य न किञ्चिदपि पीड्यते ।
तृतीयं मासमावश्यं कालाज्ञायां भवेन्नरः ।।३५० ।।

कालो दूरस्थितो वापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वदामि समासेन यथाऽऽदिष्टं शिवागमे ।। ३५१ ।।

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहितः ।। ३५२ ।।

ततश्चाकाशमीक्षेत ह्रीं परब्रह्मणे नमः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः पश्यति शंकरम् ।।३५३ ।।

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधर हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणांपतिर्भवेत् ।
वर्षद्वयेन तेनाथ कर्ता हर्त्ता स्वयंप्रभुः ।।३५४ ।।

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च ।
स ततोभ्यासयोगेन नास्ति किंचित्सुदुर्लभम् ।।३५५ ।।

यद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यतिव्योम्नि निर्मले ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ।।३५६ ।।

पीते व्याधिर्भयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत् ।
नानावर्णेऽथ चेत्तस्मिन्सिद्धिश्च गीयते महान् ।।३५७ ।।

पदे गुल्फे च जठरे विनाशः क्रमशो भवेत् ।
विनश्यतो यदा बाहू स्वयं तु म्रियते ध्रुवम् ।।३५८ ।।

वामबाहुस्तथा भार्या नश्यतीति न संशयः ।
दक्षिणे बन्धुनाशो हि मृत्युमासे विनिर्दिशेत् ।।३५९ ।।

अशिरो मासमरण विना जंघे दिनाष्टकम् ।
अष्टभिः स्कन्धनाशेन च्छायालोपेन तत्क्षणात् ।। ३६० ।।

प्रातः पृष्ठगते रवौ च निमिषाच्छायाऽङ्गुलिश्चाधरं
दृष्ट्वाऽर्द्धन मृतिस्त्विनन्तरमहो छायां नरः पश्यति ।
तत्कर्णांसकरास्यपार्श्वहृदयाभावे क्षणार्धात्स्वयं
दिङ्मूढो हि नरः शिरोविगमतो मासांस्तु षड् जीवति ।। ३६१ ।।

एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निनारन्तरम् ।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिके ।। ३६२ ।।

संपूर्ण वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ।।३६३ ।।

मूत्रं पुरीष वायुश्च समाकालं प्रवर्त्तते ।
तदासौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ।। ३६४ ।।

संपूर्ण वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।
मासेन जायते मृत्युः कालज्ञेनानुभाषितम् ।।३६५ ।।

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुहींना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ।।३६६ ।।

अरुन्धतीं भवेज्जिह्वा ध्रुवा नासाग्रमेव च।
ध्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमण्डलम् ।।३६७।।

नव ध्रुवं सप्त घोष पञ्च तारां त्रिनासिकाम् ।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं प्रियते मानवो ध्रुवम् ।। ३६८ ।।

कोणावक्ष्णेरंगुलिभ्यां किञ्चित्पीड्य निरीक्षयेत् ।
यदा न दृश्यते बिन्दुर्दशाहेन भवेन्मृतः ।। ३६९ ।।

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च।
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते कालवञ्चना ।। ३७० ।।

शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलास्तथा ।
समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्धनः ।। ३७१ ।।

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् ।
योगाभ्यासात्समायान्ति साधु याप्यास्तु साध्यताम्
असाध्या जीवितं घ्नन्ति न तत्रास्ति प्रतिक्रिया ।। ३७२ ।।
येषां हृदि स्फुरितं शाश्वतमद्वितीयं
तेजस्तमोनिवहनाशकरं रहस्यम् ।
तेषामखण्डशशिरम्यासुकांतिभाजां
स्वप्नेऽपि नो भवति कालभयं नराणाम् ।। ३७३ ।।

इडा गंगेति विज्ञेया पिंगला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वतीं वीद्यात्प्रयागादिसमस्तथा ।। ३७४ ।।

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
बद्धपद्मासनो योगी बंधयेदुड्डियानकम् ।।३७५ ।।

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।
ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धिहेतवे ।। ३७६ ।।

पूरकः कुरुते वृद्धि धातुसाम्यः तथैव च।
कुम्भके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्धनम् ।।३७७ ।।

रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं व्रजेत् ।
पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबन्धं च कारयेत् ।।३७८ ।।

कुम्भयेत्सहजं वायुं यथाशक्ति प्रकल्पयेत् ।
रेचयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येणापूरयेत्सुधीः ।। ३७९ ।।

चन्द्र पिबति सूर्यश्च सूर्यं पिबति चन्द्रमाः ।
अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ।।३८० ।।

स्वीयाङ्गे वहते नाडी तन्नाडीरोधनं कुरु ।
मुखबन्धममुञ्चन्वै पवनं जायते युवा ।। ३८१ ।।

मुखनासाक्षिकर्णान्तानंगुलीभिर्निरोधयेत् ।
तत्त्वोदयमिति ज्ञेयं षण्मुखीकरणं प्रियम् ।।३८२ ।।

तस्य रूपं गतिः स्वादो मंडलं लक्षणं त्विदम् ।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित् ।।३८३ ।।

निराशो निष्कलो योगी न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
वासनामुन्मनां कृत्वा कालं जयति लीलया ।।३८४ ।।

विश्वस्य वेदिका शक्तिनेंत्राभ्यां परिदृश्यते ।
तत्रस्थं तु मनो यस्य याममात्रं भवेदिह ।। ३८५ ।।

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः ।
शिवेनोक्तं पुरा तन्त्रे सिद्धस्य गुणगह्वरे ।। ३८६ ।।

बद्ध्वा पद्मासनं ये गुदगतपवनं सन्निरुद्ध्यामुच्चेस्तं
तस्यापानरन्ध्रक्रमजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्ध्य ।
एकीभूतं सुषुम्नाविवरमुपगतं ब्रह्मरन्ध्र च नीत्वा
निक्षिप्याकाशमार्गे शिवचरणरतायान्ति ते केऽपि धन्याः ।। ३८७ ।।

एतज्जानाति योगी य एतत्पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ।।३८८ ।।

स्वरज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पदतले भवेत् ।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ।।३८९ ।।

प्रणवः सर्व वेदानां ब्राह्मणे भास्करो यथा ।
मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ।।३९० ।।

नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनम् ।।३९१ ।।

एकाक्षरप्रदातारं नाडीभेदविवेचकम् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्रव्यं यद्यत्त्वा चानृणी भवेत् ।।३९२ ।।

स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देवि वश्यं स्त्रियस्तथा ।
गर्भादानं च रोगश्च कलार्द्धनैवमुच्यते ।। ३९३ ।।

एवं प्रवर्तितं लोके प्रसिद्ध सिद्धयोगिभिः ।
चन्द्रार्कग्रहणे जाप्यं पठतां सिद्धिदायकम् ।। ३९४ ।।

स्वरस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम् ।
चिन्तयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ।। ३९५ ।।

इति श्री शिवपार्वती संवादे स्वरोदयशास्त्रं समाप्तम् ।।